हास्यरस का मौलिक उपन्यास

❋

ठाकुर ठेंगा सिंह

❋

हास्यरसावतार

श्री कांतानाथ पांडेय 'चोंच' एम. ए.

प्रकाशक
पुस्तक-सदन
ज्ञानवापी, वाराणसी

प्रथम संस्करण २०१४ वि०
मूल्य—तीन रुपये

मुद्रक
बजरंगबली गुप्त 'विशारद'
श्री सीताराम प्रेस, जालिपादेवी, वाराणसी

ठाकुर ठंगा सिंह के

लेखक के सम्बन्ध में

पाण्डेयजी मार्जित हास्यरस के सिद्धहस्त प्रसिद्ध कवि हैं। आपका हास्य सूर्य के प्रकाश की तरह उन्मुक्त, परिष्कृत तथा सुरुचिपूर्ण होता है।

—हिन्दी साहित्य के शृंगार श्री सुमित्रानन्दन पन्त

उच्चकोटि के हास्यरस की रचना में इन्होंने प्रवीणता प्राप्त की है जिसमें बहुत ही कम व्यक्ति सफल हो पाये हैं।

—डाक्टर रामकुमार वर्मा

इनकी लेखनी सशक्त है और इन्होंने अब तक हास्यरस में अनेक उच्चकोटि के मर्यादापूर्ण ग्रन्थ लिखे हैं। ये निश्चय ही एक सफल कलाकार हैं।

—पण्डित बलदेव उपाध्याय

पाण्डेयजी ने हिन्दी साहित्य में अपना सुनिश्चित स्थान बना लिया है। अपनी हास्य रसात्मक कविताओं के लिए ये सुप्रसिद्ध हैं।

—डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा

विहंगमत्वं न श्लाघ्यं कस्य "चोंच" महाकवेः।
निष्कुष्णाति दविष्ठोऽपि यो दृष्ट्यैवामिषं मिषात्॥
वैहासिकत्वं न श्लाघ्यं कस्य "चोंच" महाकवेः।
यो हासयन् रोदयति शोषयन् परिसिञ्चति॥

\+ + + + ये व्यंग्य लेखक हैं और तीव्र व्यंग्य लेखक हैं किन्तु इनके व्यंग्य में यह बड़ा ही सौष्ठव है कि यद्यपि ये अपने शिकार पर बड़ी तीक्ष्णता से चोट करते हैं तथापि इनका वह शिकार भी, औरों (पाठकों) के समान ही, अपनी पारिहासिक अप्रतिष्ठा में भी आनन्द का अनुभव करता है।

—स्व० आचार्य केशवप्रसाद मिश्र

इनकी लेखनी में बड़ा बल है और ये हिन्दी तथा अंग्रेजी दोनों भाषाओं के जबर्दस्त लेखक हैं।

—प्रोफेसर अली अमीर

समर्पण

भारतेन्दुयुग के पश्चात् जिनकी कृतियों ने सर्वप्रथम हिन्दी-
संसार को हँसाया और उत्फुल्ल किया; 'क्लीनशेव्ड'
रहकर भी जिन्होंने अपनी 'लम्बी दाढ़ी' से
विश्व को विस्मित और मुझ जैसे नवीन
लेखकों को प्रेरित, प्रभावित किया

अपने उन्हीं गुरु-तुल्य श्रद्धेय बड़े भाई

हास्यरसावतार श्री जी. पी. श्रीवास्तव को

यह कृति सादर समर्पित है।

—विनीत

कान्तानाथ पाण्डेय

पुस्तक के संबंध में

'ठाकुर ठेंगा सिंह' की रचना आज से पन्द्रह वर्ष पूर्व हुई थी। अर्थात् सन् १९४२ ई० म। तब भारत पराधीन था।

इसके प्रकाशक महोदय ने शायद् इसे पराधीन भारत में छापना ठीक नहीं समझा, इसी कारण इसे चौदह वर्ष तक छिपाये या दबाये रहे। किन्तु उनका कहना है कि पुस्तक स्वयं कहीं छिप गयी थी जिससे अब छप रही है।

चार फर्मे छप जाने के पश्चात् मुझे पता चला कि पुस्तक छप रही है, इस कारण उनमें कोई परिष्कार करना मेरे लिए सम्भव न हो सका, हाँ इधर के परिच्छेदों में मैंने काफी काट-छाँट कर दी है, ऐसा करना आवश्यक भी था कारण देश और समाज की स्थिति में भी काफी काट-छाँट हो चुकी है।

—कान्तानाथ पाण्डेय

ठाकुर ठेंगा सिंह

१

ठाकुर ठेंगा सिंह के यहाँ आज बड़ी चहल-पहल है। एक नहीं, दो दो कारणों से ! पहिला कारण तो यह है कि उनकी पत्नी सुयश मालिनी को पुत्र-रत्न उत्पन्न हुआ है। आज उसकी बरही है ? दूसरा कारण यह है कि अब तक तो ठाकुर ठेंगा सिंह तहसीलदार थे, अब एक सप्ताह हुआ कि उनकी पद-वृद्धि का समाचार आया। अर्थात् अब वे डिप्टी कलेक्टर हो गये हैं और उनकी बदली कानपुर के लिए हो गयी है। पर उन्होंने इधर पन्द्रह दिनों की छुट्टी ले रक्खी है। छुट्टी समाप्त होते-होते वे कानपुर पहुँच जाने वाले हैं। मित्रों ने ठाकुर साहब को बधाइयाँ दीं और उनसे कहा—आप हमें दावत दीजिए। सो आज ठेंगा सिंह जी के यहाँ दावत है।

मित्रों ने, हाँ, उन मित्रों ने, जिन्हें मुँह-लग्गू कहा जा सकता है, ठाकुर साहब से कहा —यार, तुमने आज तक कभी किसी को एक पैसे का पान भी न खिलाया होगा, पर अब थोड़ा बहुत जलपान तो कराओ, या हम लोगों को भी ठेंगा ही दिखाओगे, उस मिडिल स्कूल वाली घटना की तरह।

एक बार रायबरेली के मिडिल स्कूल के प्रधानाध्यापक आदि तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के कुछ सदस्यों ने स्कूल के वार्षिकोत्सव पर ठाकुर ठेंगा सिंह को सभापति बनाया। कोई नयी कक्षा खोलने आदि के लिए स्कूल को कुछ रुपयों की आवश्यकता

थी। लोगों का विचार हुआ कि तहसीलदार ठाकुर ठेंगा सिंह से बढ़कर और कौन व्यक्ति मिलेगा। वे चाहें तो १५०) रु० देना कौन बड़ी बात है। इसलिए जब ये सभापति होकर गये तो उन्हें अभिनन्दन-पत्र दिया गया जिसमें उनका सम्बन्ध कर्ण तथा भोज के साथ जोड़ा गया। ठाकुर साहब ने अध्यापकों की प्रशंसा की, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की तारीफ कर दी अपने भाषण में उस मिडिल स्कूल को नालन्दा-विश्व-विद्यालय का ही नया रूप बताया, वहाँ के अध्यापकों को द्रोणाचार्य, शाक्यसिंह, चाणक्य तथा अभिनव गुप्त पादाचार्य के वंशज सिद्ध किया और मुस्कराते हुए कुर्सी पर बैठ गये। लोग समझ रहे थे कि भाषण के अन्त में ठाकुर साहब सौ-पचास रुपये प्रदान करेंगे, पर उन्होंने कानी कौड़ी भी न दी। मित्रों को जब इस घटना का पता लगा तो बोले--भई वाह, हो पूरे ठेंगा सिंह। तुमने बेचारों को कुछ भी न देकर बड़ा निराश किया। वे सब बड़ी-बड़ी आशाएँ लगाये हुए थे।

'पर मुझे इसका कहाँ पता था कि वे मुझसे रुपये भी चाहते हैं' ठाकुर साहब ने सरलतापूर्वक कहा--यदि मैं जानता होता तो जाता ही नहीं'। 'यह एक रही। आखिर लोग सभापति बनाते किस अभिप्राय से हैं, इसी रुपये के लिए ही नहीं तो और किसके लिए। यह जो अभिनन्दन-पत्र, प्रशंसा आदि होती है, केवल टका सीधा करने के लिए, और झूठी तारीफ करके, मीठी-मीठी बातें करके उल्लू बना कर वे अपना मतलब सिद्ध कर लेते हैं। अपने अभिनन्दन या भाषण में जिस समय वे मुँह से कहते हैं--'आज हमारा धन्य भाग्य, हमारी संस्था

आपके आगमन से गौरवान्वित हो गयी है, जाति, समाज और देश के आप प्राण हैं, हम आपके बड़े ऋणी हैं, इस संस्था की आर्थिक अवस्था बड़ी शोचनीय है' आदि-आदि। उस समय उनका हृदय ठीक इसके विरुद्ध कहता रहता है—आपसे बढ़कर मूर्ख संसार में कोई नहीं है, न मालूम कैसे, किस बेइमानी से इतना रुपया बटोर कर तुम धनी बन बैठे हो, तौलने में जरूर डैनी मारते हो सावजी, कितनों का गला काट कर यह मोटर कार खरीदी होगी, पर मुझसे क्या, मेरी संस्था को दो चार सौ देते जाओ, समझ लेना एकाध दिन मुनाफाखोरी नहीं की। पर तुम्हारे चेहरे से मालूम पड़ रहा है कि मेरी बातों का तुम पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ है, अच्छा देखना है कि तुम उल्लू बनते हो, या हम लोग। हमारी मीठी-मीठी बातें सुनकर बड़े-बड़े कंजूस द्रवित हो गये हैं, तुम कैसे नहीं होगे। सूरत तो तुम्हारी ऐसी गावदुम ऐसी है कि चपत लगाने का जी चाहता है, पर तुम्हें दुहने के लिए माला पिन्हायी गयी है। लोग घाटियों, पण्डों और महन्थों की तो निन्दा करते हैं जो बेचारे इतना परिश्रम करके तब कहीं दो चार पैसे पा जाते हैं, पर वे लोग नहीं जानते कि चतुरता में हम घाटियों के चाचा, पण्डों के पिता और महन्थों के बाबा हैं। और उस पर जनता हमें जन-सेवक आदि न जाने क्या-क्या कहती है। सो भई ठाकुर ठेंगा सिंह तुमने उन लोगों को खूब छकाया। बेदाग बच गये। साफ निकल आये।

'भई उन लोगों ने मुझसे तो आर्थिक सहायता की बात ही नहीं की, अन्यथा दो तीन रुपये दे दिये होता, वे तो मुझे

केवल कर्ण का नाती और भोज का भान्जा सिद्ध कर रहे थे।'

'तो यह सिद्ध करने का प्रयोजन क्या था, क्या तुम्हारा विवाह कराने के लिए कोई कुण्डली मिला रहे थे। या तुम्हारे विवाहोपलक्ष्य में शाखोच्चार हो रहा था।

'तो मैंने भी क्या बुरा किया, किसी को द्रोणाचार्य का परपोता, किसी को चाणक्य का परनाती और किसी को किसी और प्राचीन विद्वान् का सगा-सम्बन्धी बताया। उन्होंने मेरी प्रशंसा की, मैंने उन लोगों की कर दी। कुछ बुरा किया?

'इसे बुरा कौन कह सकता है?' मित्रों ने कहा।

'और जब मैं उनका अभिनन्दन और भाषण सुन रहा था वा जब स्वयं भाषण कर रहा था तो मेरा हृदय भी कुछ और ही कह रहा था, क्या कह रहा था, सो सुनोगे?'

'क्यों नहीं, तुम्हारा हृदय अवश्य कोई भारी बात कह रहा होगा।' 'भारी और हल्की का भेद तो मैं नहीं कर सकता, क्योंकि हृदय की बात को तौलना मैं नहीं जानता। उसकी तो सदैव एक ही प्रकार की तौल होनी चाहिए। पर हृदय में ऐसे ही विचार उठ रहे थे—अजी तुम लोग मन में सोच रहे होगे कि कैसा बेवकूफ फँसाया है, अब दिया इसने सौ-पचास। कर्ण का नाती बनाने से यह प्रसन्न होगा। पर भई मैं यह सब खूब समझ रहा हूँ। बके जाओ जितना बक सको। इहाँ न लागिहि राउरि माया। यदि तुम लोगों के जाल को समझ सकने की शिकायत न होती, तो मैं तहसीलदारी क्या खाक करता।'

'किन्तु यह तो बताओ, उन सबके तीन चार रुपये अभिनन्दन पत्र छपाने में, माला वाला खरीदने में, स्कूल सजाने में

तो लग ही गये होंगे। विद्यार्थियों को भी निराशा हुई होगी। तुम्हारे स्वागत में कविताएँ सुनायीं, गाने गाये।'

'उहूँ! सो तो मेरे भी रुपये खर्च हुए। साढ़े तीन रुपये का पेट्रोल खर्च हुआ। जलपान करने में विलम्ब हुआ। और छात्रों को तो छुट्टी दूसरे दिन के लिए भी मेरे सम्मान में दे ही दी गयी थी। यह घोषणा तो गल्ती से मेरे भाषण के पूर्व ही प्रधानाध्यापक महोदय कर चुके थे। और स्कूल को चाहे १०००) मिले या स्कूल का चार हजार का सामान चोरी चला जाय, छात्र लोग पूरे दार्शनिक होते हैं, हर्ष और विषाद से परे। उन्हें केवल छुट्टी चाहिए।'

सो इन्हीं ठाकुर ठेंगा सिंह के यहाँ आज दावत है। सो भी मित्रों के अनुरोध से या अपनी ही प्रेरणा से, इसे कौन जाने। यदि केवल मित्रों के ही अनुरोध से होता तो यह कैसे सम्भव था कि मिडिल स्कूल के अध्यापक भी आमन्त्रित होते, और दूर-दूर से ठाकुर साहब के हितू और नातेदार लोग भी। और ठाकुर साहब ने मिडिल स्कूल के छात्रों को मिठाई खाने के लिए जो ५१) रु०, भेजा था सो क्या मित्रों के कहने से ?

ठाकुर साहब के यहाँ पधारे हुए व्यक्तियों में कुछ के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। वे हैं सर्वश्री घर उजागर सिंह (ठाकुर साहब के ससुर साहब), बल्लू सिंह (ठाकुर साहब के बड़े साले साहब), महँगू नाई (उनके ससुर साहब का हज्जाम) तथा सुश्री चकोतरा देई (ठाकुर साहब की फूआ) तथा सुश्री 'वसन्त-मालिनी (ठाकुर साहब की पत्नी सुयश मालिनी की छोटी बहिन, अर्थात् ठाकुर साहब की साली)

ठाकुर ठेंगा सिंह के पूज्य पिता श्रीमान् ठाकुर ठेंगा सिंह अपने समधी श्री घर उजागर सिंह के साथ ओसारे में बिछे हुए गलीचे पर बैठे तथा हुक्के की नली मुँह में डाले, बातें कर रहे हैं। ठाकुर साहब के पुरोहित पण्डित परमानंदजी बल्लू सिंह से गप्प कर रहे थे। महँगू नाई की खातिरी में ठाकुर साहब का नौकर फेंकुवा लगा हुआ था। और सुश्री चकोतरा देई को सुश्री वसन्त मालिनी जी पान बना कर देने जा रही थीं।

आज सन्ध्या के ७ बजे से दावत है। नगर के प्रमुख रईस उसमें निमन्त्रित हैं। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, म्युनिस्पल बोर्ड के सभी सदस्य, अनेक वकील मुख्तार भी आवेंगे। कुछ अफसरों के भी आने की आशा है। नगर के बाहर से कई व्यक्तियों ने शुभ कामनाएँ भेजी हैं तथा भेजे हैं कुछ उपहार-नव जात शिशु के लिए। मिस्टर टामस तथा टेरेसा ने भी कई खिलौने तथा कपड़े भेजे हैं।

सुश्री वसन्त मालिनी ने फूआजी अर्थात् सुश्री चकोतरा देई को पान, सुपारी और सुर्ती देते हुए कहा—'बुआजी, तुमसे एक बात पूछूँ, रूठ तो न जाओगी।'

बुआजी ने पान चुभलाते हुए, क्योंकि दाँत न होने से वे चबा न सकती थीं, कहा—हाँ हाँ बिटिया पूछो न, क्या पूछती हो, मुझसे कौन संकोच, कौन लाज। जब मैं तुम्हारी बहिन की फुफुआ सास हुई, तो तुम्हारी भी तो हुई न ?

इस प्रेमसूचक बात के पश्चात् वसन्त मालिनी का साहस ही कुछ देर तक अपना प्रश्न पूछने का न पड़ा। पर उसने कुछ देर बाद साहस करके पूछ ही तो डाला—बुआजी, तुम लोग

इतनी भद्दी-भद्दी गालियाँ क्यों गाती हो। क्या इसके बिना काम ही नहीं चल सकता। अभी परसों जब जीजाजी के कई सम्बन्धी तथा मेरे पिताजी और भइया भोजन करने बैठे थे तो तुमने मुहल्ले भर की स्त्रियों को बटोर कर कैसी-कैसी गालियाँ गायी थीं। सच कहती हूँ। मुझसे तो वहाँ बैठा न रहा गया। मैं तो कान बन्द करके भागी। बुआजी मर्द लोग यह सब सुन कर क्या कहते होंगे। क्या लज्जित न होते होंगे। और तुम लोग जो अन्य समय इतना लम्बा घूँघट काढ़ती हो, भरी मजलिस को सुना-सुना कर ये भद्दे गीत कैसे गा लेती हो।

'अरे' तू अभी लड़की है न, इन बातों को क्या जाने। जब सयानी होगी। ससुराल जायगी तो सब समझ जायगी। यह सब शुभ काम में करना ही पड़ता है, प्रथा है, बड़ा मंगल है सगुन है।'

'सगुन है? क्या किसी को गाली देना सगुन है। यह कैसे? तब तो लोग गाली सुन कर मार-पीट न करके एक दूसरे को गले लगाते।'

'अरे यह वैसी गाली थोड़े ही है, यह तो प्रसन्न करने के लिए ही दी जाती है। फिर सबको थोड़े ही दी जाती है। जिससे पद या रिश्ता लगता है उसी को न?'

'अच्छा तो गाली का रिश्ता भी लगता है क्या?'—बसन्त मालिनी ने कौतुक से पूछा।

'तब क्या देखा नहीं तूने। तेरे पिता और भाई को ही तो विशेष करके गालियाँ दी गयी थीं। तेरे पिता मेरे समधी हुए न और बल्लू सिंह तेरा भाई होने से ठेंगा का साला हुआ कि नहीं।'

'तो इससे क्या ? साला होने से ही क्या किसी को गाली दी जा सकती है। जीजा जी भी तो किसी के साले होंगे। तब उन्हें क्यों नहीं गाली दी। 'दुर पगली। अपने घर में भी कोई गाली सुनता है क्या। वह जब तेरे यहाँ या अपनी बहिन की ससुराल जायगा तो वहाँ वह भी गाली सुनेगा। तू अपने यहाँ उसके लिए गाली देकर बदला चुका लीजियो।' ना बुआ जी, यह तो मेरा किया न होगा। चाहे मैं मर भी क्यों न जाऊँ। मेरे मुँह से वैसी गन्दी बातें न निकलेंगी। यदि आप लोगों को गाली ही देनी थी तो गधा, पाजी, सुअर, चाण्डाल, नालायक वगैरह कह देतीं, गीत गढ़ गढ़ कर भद्दी-भद्दी बातें क्यों कहा ? बुआजी खिल-खिलाकर हँस पड़ीं। हँसते ही हँसते बोलीं—अरे तू कैसी पागल लड़की है कहीं यह सब भी गाली दी जाती है। यह सब तो नौकर-चाकरों को या चोर-बेइमानों को लोग गुस्से में कहा करते हैं। विवाह-शादी, उछाह-बधाव में तो जो गालियाँ गायी जाती आयी हैं वे ही न गायी जायँगी।

'यह कौन कहता है कि ये गालियाँ सदा से गायी जाती रही हैं। मैं अपनी एक सखी के विवाह में गयी थी, वहाँ कितने सुन्दर मंगल गीत गाये गये थे। उन गीतों में राम और सीता के विवाह की बातें, दशरथ तथा कौशल्या आदि की कथा थी। सुन कर रुलाई आती थी। भाई-बहिन के प्रेम, कन्या के प्रति वात्सल्य आदि का बड़ा ही करुणापूर्ण वर्णन था, पर मैं उसका अर्थ ही न समझ सकी। यदि मंगल या सगुन ही मनाना है तो ऐसे गीत गाओ जिनमें कुछ साधारण

चुटकियाँ ली गयी हों, बेवकूफ बनाया गया हो, न कि माँ-बहिनों को लगा-लगा कर भद्दी बातें बको। उन माँ-बहिनों ने क्या किया है। और आश्चर्य तो यह है कि नारियों के मुँह से ही नारियों के लिए गाली। मैंने तो अपनी माँ से भी इस बारे में पूछा तो उन्होंने कहा था—बेटी, यह सब कुछ बदमाश वेश्याओं और गवनहारियों को अपने यहाँ बुला कर नचवाने और समधी को गाली गवाने का परिणाम है। उन वेश्याओं के गाने के लिए कुछ विधर्मी शायरों ने ऐसे भद्दे गीत लिखे, जो शीघ्र ही नारी-समाज में प्रचलित हो गये। न कहीं वेदों में गाली का समर्थन है, न पुराणों में। यह सब बुढ़िया-पुराण में अलबत्ता है। हिन्दू-नर-नारी वैदिक नियमानुसार, धर्म-शास्त्र आज्ञा के अनुकूल जनेऊ-ब्याह करना तो छोड़ रहे हैं, पर इस 'बुढ़िया पुराण' की गाली को अपना रक्खा है। अशिक्षित या शिक्षित, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, कायस्थ, खत्री सभी के घरों की महिलाएँ गाली गाती पायी जाती हैं।

बुआजी कुछ रूठ-सी गयीं। बोलीं—हाँ हाँ, तू और तेरी माँ को बड़ी अक्ल है, मैं बेवकूफ हूँ।'

'सो मैं नहीं कहती बुआजी, आप नाराज न हों। अच्छा यह तो बतावें कि यह गाली वाला रिश्ता या पद किस प्रकार और क्यों लगता है।'

बुआजी कुछ देर तक तो चुप रहीं फिर बोलीं—अरी अपनी माँ से ही पूछ लीजियो।

पर जब वसन्त मालिनी ने उनके बहुत हाथ-पैर जोड़े, माफी माँगी, तो वे प्रसन्न हो गयीं और थोड़ी और सुर्ती खाकर

फिर कहने लगीं—अरी समधी-समधिन में, देवर-भौजाई में, भाञ्जे-मामी में तथा बहनोई और साली में हँसी-मजाक का रिश्ता लगता है।

'अरे राम राम। यह आप क्या अण्ट सण्ट बके जा रही हैं बुआजी। यह किस वेद-पुराण या शास्त्र के प्रमाण पर आप कह रही हैं। मैंने तो वाल्मीकीय रामायण की कथा सुनी है जिसमें लिखा है कि लक्ष्मणजी सीताजी के हाथ और कान के गहने तक न पहिचान सके थे, नित्य पैर छूने के कारण पैर की बिछिया मात्र को चीन्ह सके थे। वे सीताजी को अपनी माँ समझते थे। फिर सीताजी को ही क्यों हिन्दू-सन्तान तो पराई स्त्री मात्र को ही अपनी माता समझता है. इस नाते लक्ष्मणजी सभी पर-स्त्रियों को अपनी माता समझते रहे होंगे, फिर यह किस कलियुगी ने पाप फैलाया कि देवर-भौजाई या भाञ्जे-मामी आदि में मजाक का रिश्ता लगता है। यदि हम सब लड़कियाँ ऐसी वाहियात बातें बकें तो आप लोगों को हमें डाँटना चाहिए, उल्टे आप ही सब बूढ़-पुरनिया ऐसी-ऐसी बातें कह रही हैं।

सुश्री चकोतरा देई इन युक्तियुक्त बातों का क्या उत्तर देतीं। कट कर रह गयीं। सचमुच लड़की ठीक ही तो कह रही थी। ये लोग पढ़ी-लिखी कन्याओं को बुरी कहती हैं, पर सभी बुरी नहीं होतीं। और हम सब अपढ़ महिलाएँ यद्यपि आचरण के बारे में पवित्र हैं, अपने पति की सेवा तथा बच्चों का पालन करती हैं, पर-पुरुषों के साथ घूमना-फिरना नापसन्द करती हैं, फिर भी विवाह-शादी के अवसरों पर एकदम निर्लज्ज के

समान भद्दी गालियाँ देने लगती हैं, होली आदि त्यौहारों तथा यों भी कभी-कभी देवर-भौजाई का मजाक पसन्द करती हैं। पसन्द क्या करती हैं, जिन घरों में सभ्य तथा शीलवती स्त्रियाँ अपने पद लगने वाले देवर, नन्दोई, बहनोई के सामने नहीं होतीं, उनसे लज्जा करती हैं, उनसे मजाक नहीं करतीं, उन घरों को घृणा की दृष्टि से देखती हैं।' बुढ़िया बुआजी बसन्त मालिनी के उत्तर से कायल हो चुकी थीं, पर आत्मगौरव नष्ट होने के भय से इसे स्वीकार न कर सकीं।

× × × ×

सन्ध्या का समय हो रहा है। ठाकुर साहब के आमन्त्रित व्यक्तियों का आगमन प्रारम्भ होगया है। सबके भोजन के लिए पृथक्-पृथक् प्रबन्ध है, पर पृथ्वी पर पीढ़ों पर बैठकर भोजन करने का, कुर्सी टेबुल पर बैठकर प्लेट में खाने का नहीं।

हाँ, कुछ अफसरों के लिए चाय का प्रबन्ध अवश्य है, पर वह भी जमीन पर गलीचों के ऊपर बैठकर ही पीने का। ठेंगा-सिंह भोजन की सामग्री तथा भोजन के आसन आदि सबमें भारतीय दृष्टिकोण रखते थे। बिना हाथ-पैर धोये वे न स्वयं भोजन करते थे और न किसी का ऐसा करना उन्हें पसन्द ही था। कड़ाके का जाड़ा क्यों न पड़ता हो, वे सबेरे नंगे बदन तथा सन्ध्या को ऊनी रफल ओढ़कर भोजन करते थे। उनके कई मित्र उन पर हँसते थे, उन्हें बनाने का प्रयत्न करते थे, पर वे यह सोचकर चुप रह जाते थे कि—हँस लो भरपेट, तुम लोगों का जमाना है। चार पाजी आदमी भी एक विद्वान् का मजाक उड़ा सकते हैं, उसे तंग कर सकते हैं।

जब तुम लोग इन सब बातों का रहस्य समझ जाओगे तो स्वयं लज्जित होकर, हँसी उड़ाने के बदले इन पर श्रद्धा करोगे। ठाकुर ठेंगा सिंह का विश्वास अपने धार्मिक आचार-विचारों पर अगाढ़ है, दृढ़ है। गाली गाने ऐसे बनावटी लोकाचार को वे भी नहीं मानते थे, पर जिन कार्यों का वेद-शास्त्रों में ऋषियों ने विधान किया है, उन्हें वे अवश्य मानते थे। किंतु स्वार्थियों द्वारा की हुई मनमानी व्याख्या के वे प्रबल विरोधी थे।

हाँ, तो सभी अतिथि आ चुके थे। अपनी-अपनी जाति और कुलीनता के अनुरूप सब लोगों को लोग पृथक्-पृथक् बरामदों में खिला-पिला रहे थे। केवल इनके कुछ कचहरिया मित्र अफसर और वकील एक कालीन पर बैठे हुए चाय-पानी कर रहे थे। यद्यपि उनमें भी कई बाजार की मिठाई न खाते थे, इसलिए वे लोग केवल फल और रबड़ी ही खा रहे थे। केवल ठेंगा सिंहजी के पुरोहित पण्डित परमानन्दजी इधर-उधर घूमकर सबका निरीक्षण कर रहे थे। वे किसी के यहाँ भोजन नहीं करते। स्वयंपाकी हैं। एक मुंशीजी ने, जो आजकल वकालत कर रहे थे, पर जिनके बाप उन्हीं पण्डितजीके गाँव के पटवारी थे, और जो एक बार एक मेहतरानी के साथ गाँव से भाग कर ६ महीने तक लापता थे और बाद में आकर जाति-च्युत होकर किसी प्रकार कुछ समय तक कष्टपूर्वक जीवन बिता कर यमपुर को पधारे थे, पण्डित जीसे मजाक के ढंग पर कहा—क्यों पण्डितजी, एक कप टी लें न।

पण्डितजी जितने ही शान्त स्वभाव के थे—भीतर से, उतने ही टेढ़े भी थे ऊपर से। उनका सिद्धान्त था—नीचों के

साथ शिष्टता का व्यवहार करना उन्हें और भी नीचता करने के लिए प्रोत्साहित करना है। इसी से उन्हें विवश होकर कभी-कभी उद्दण्डता का भी सहारा लेना पड़ता था।

पण्डितजी ने 'कप' और 'टी' का अर्थ नहीं समझा, पर यह अवश्य समझा कि मुंशीजी उन्हें चिढ़ाना चाहते हैं। इससे तुरन्त ही बोले—कहो चिथरू के बेटा, तुम कपटी और तुम्हारे बाप कपटी। मैं क्यों कपटी जी।'

अधिकांश उपस्थित व्यक्तियों को पण्डितजी की निर्भीकता, उनके आत्म-सम्मान के भाव का पूरा परिचय था। पण्डितजी उन ब्राह्मणों में न थे जो दक्षिणा के लिए धर्म-विरोधी कामों में सम्मिलित हो जाते हैं। अपने सिद्धान्तों की रक्षा के लिए वे बड़ों-बड़ों को फटकार चुके थे। इसलिए अन्य उपस्थित व्यक्ति बड़े घबड़ाये कि नाहक हमारे इस साथी नवयुवक ने पण्डितजी को छेड़ा। उन लोगों ने पण्डितजी को बड़ा समझाया। ठाकुर ठेंगा सिंह ने भी उनसे क्षमा-प्रार्थना की। तब कहीं जाकर पण्डितजी का कोप शान्त हुआ। उन्होंने कहा—मुंशीजी सावधान! अभी तुम्हारा लड़कपन दूर नहीं हुआ है, इसी से वकील होकर भी, भले आदमियों की पहिचान, विद्वानों की प्रतिष्ठा का ज्ञान, तुम्हें अब तक नहीं हुआ। मैं तुम्हारे बाप-दादा तक का इतिहास जानता हूँ, तुम मुझे क्या चिढ़ाओगे। जानते नहीं हो कि मैं तुम्हारे ऐसा सर्व-भक्षी नहीं हूँ। फिर इसमें मुझे चिढ़ाने की क्या बात थी। खैर, मेरे पोते के बराबर हो, इसीसे मैं तुम्हें अधिक नहीं डाँटना चाहता, बस, यही कहे देता हूँ कि मुंशीजी सावधान!

२

ठाकुर ठेंगा सिंह जब इस धराधाम पर अवतीर्ण हुए तो कौन जानता था कि वे एक दिन डिप्टी कलेक्टर बन बैठेंगे। उनके पिता ठाकुर हेंगा सिंह और उनके भी पिता वयोवृद्ध ठाकुर पेंगा सिंह अपनी झोपड़ी के आगे द्वार पर मचिया पर बैठे हुए यही सोच रहे थे कि देखें इस बार उन्हें पितृ-लोक पहुँचाने के लिए कोई पुत्र रत्न उत्पन्न होता है या हर बार की भाँति इस बार भी कोई कन्या ही अवतार लेती है। बुढ़ऊ के बाप-दादों की सारी सम्पत्ति (कन्या-दान) रूपी अश्वमेध में ही लुट चुकी थी। अभी तीन लड़कियों के उद्धार करने की समस्या सामने मुँह बाये खड़ी थी। अब रह ही क्या गया था। कुल बीस-बाइस बीघे खेत और एक यही कच्चा मकान ही तो बचा था। पर मालूम पड़ता है कि इस बार भगवान् ने उनकी पुकार सुन ली। और उनका तथा उनके पितरों का उद्धार करने के लिए श्रीमान् ठाकुर ठेंगा सिंह ने उनके घर में पुत्र रूप में पदार्पण किया।

ठाकुर हेंगा सिंह और उनके वयोवृद्ध पिता ठाकुर पेंगा सिंह के नामकरण के विषय में तो मेरी विशेष जानकारी नहीं है, पर ठाकुर ठेंगा सिंह का नामकरण किस प्रकार हुआ, इसके सम्बन्ध में मैं प्रमाण के साथ बहुत कुछ बतला सकता हूँ। यदि आपको उत्सुकता हो, यदि आपके पेट में खलबली मची हुई हो, यदि आपसे बिना सुने न रहा जाय, तो मैं फिर आपको बता ही दूँ।

इस सम्बन्ध में सबसे आवश्यक बात जो स्मरण रखने की है वह यह है कि इस नामकरण के बारे में तीन मत हैं। पहिले मत वालों का कथन है कि जिस समय ठाकुर ठेंगा सिंह इस धरातल पर अवतरित होकर रुदन करने लगे उस समय उनके रोने की ध्वनि 'केहाँव' 'केहाँव' के ऐसी न होकर 'ठेंगा' 'ठेंगा' ऐसी मालूम पड़ी। पर इस मत के समर्थक अधिक लोग नहीं हैं। केवल ठेंगा सिंह जी की स्वर्गीया फूआजी अपनी मित्र-मण्डली में इस प्रकार की चर्चा किया करती थीं। और जब कि अब वे इस लोक में रही ही नहीं, तो उनसे पूछ-कर इसके सत्यासत्य का सटीक निर्णय कैसे किया जाय।

दूसरे मत वालों का विचार है कि उनके उत्पन्न होते ही जब ज्योतिषीजी ने वयोवृद्ध ठाकुर पेंगा सिंह से दक्षिणा और नाई टेंगरिया ने ठाकुर हेंगा सिंह से न्यौछावर तथा बख्शीश की फर्माइश की तो उक्त दोनों महानुभावों ने उक्त दोनों व्य-क्तियों को अपना-अपना ठेंगा दिखाते हुए कुछ समय के लिए सन्तोष और धैर्य धारण करने का सदुपदेश किया। फलतः ज्योतिषीजी तथा नाई महाशय की कृपा से ही नवजात शिशु का 'ठेंगा' नाम गाँव तथा आस पास के जिलों में प्रसरित हो गया।

तीसरा दल उन लोगों का भी है जो कुछ समझदार हैं। उनकी शुभ सम्मति में इस नामकरण का रहस्य अधिक सरस है। ऐसे लोगों की पवित्र राय यह है कि पुरोहितजी को कविता से अभिरुचि थी और उन्होंने बेताब के 'प्रास-पुञ्ज' का मार्मिक अनुशीलन किया था। अतः नामकरण के समय

हेंगा और पेंगा के वजन का शब्द 'ठेंगा' ही उन्हें जँचा। अतः उन्होंने अनुप्रास के विचार से ऐसा नामकरण किया। पुरोहितजी के कई मित्रों का कथन है कि नामकरण के अवसर पर उन्होंने यह भी कहा था कि भइया यदि जीवित रहा और इस बालक को भी कभी पुत्र हुआ तो उसका नाम 'रेंगा' रखकर ही मानूँगा। मालूम पड़ता है कि पुरोहितजी में संगीत-प्रेम भी अवश्य था, तभी वे पेंगा, हेंगा, ठेंगा, रेंगा ऐसी सुन्दर और श्रुति-मधुर शब्दावली के आकर्षण से अपने को मुक्त न कर सके।

ठेंगा सिंह जब कुछ बड़े हुए तो अपने गाँव बछरावाँ में ही एक मिडिल स्कूल में पढ़ने के लिए बिठाये गये। बुद्धि प्रखर थी, इसलिए शीघ्र ही मिडिल परीक्षा उत्तीर्ण होकर अपने जिले रायबरेली के टाम्सन हाई स्कूल में प्रविष्ट हुए। यहाँ भी बराबर अच्छे नम्बर पाते रहे। साथ ही खेल-कूद में भी सबसे अग्गल रहते थे। पर जैसा कि खिलाड़ी लड़के प्रायः ऊधमी और शरारती होते हैं, वैसा इनका हाल न था! ये बड़े ही शान्त और सच्चरित्र थे! दूसरे लड़कों के आपसी झगड़े निपटा देना तथा अन्यायी को दण्ड दिलाना इनका प्रधान काम हुआ करता था। एक बार, जब ये एण्ट्रेंस में पढ़ रहे थे, किसी कार्यवश लखनऊ गये हुए थे! वहाँ घूमते-घूमते ये नगर से बहुत दूर बाहरी भाग में पहुँच गये। वहाँ इन्होंने देखा कि एक अँग्रेज बालिका को कुछ मुसलमान गुण्डे घेरे हुए हैं और छेड़छाड़ कर रहे हैं! गुण्डे कम-से-कम सात या आठ थे। पर ज्योंही ठाकुर ठेंगा सिंह ने इस घटना को देखा उन्होंने अपनी

नयी हाकी स्टिक, जिसे उसी दिन दोपहर के समय खरीदा था, हाथ में ले ली और गुण्डों पर टूट पड़े ! धर्म के सामने अधर्म कब तक टिक सकता है ! गुण्डे भाग खड़े हुए ! पर भागने के पूर्व तीन चार की खोपड़ियों का अच्छा स्वागत-सत्कार हो चुका था। बालिका ने इस युवक को धन्यवाद दिया ! वह हिन्दी जानती थी ! यहीं के सिटी मैजिस्ट्रेट की कन्या थी। उसके यहाँ कई हिन्दुस्तानी अफसरों के साथ उन सबकी लड़कियाँ आती रहती थीं और कई एक से उसको घनिष्ठता भी हो गयी थी ! उन्हीं के सम्पर्क से यह हिन्दी भी बोल लेती थी, और अच्छा बोल लेती थी !

सन्ध्या का समय था। अन्धकार घना हो चला था ! बालिका ने जिसका नाम मेरिया टेरेसा था, युवक से कहा— कृपा करके मुझे मेरे बँगले तक पहुँचा दीजिए। आपको तकलीफ तो अवश्य होगी, पर इतना परिश्रम और कीजिए ! 'नहीं बहिन, परिश्रम क्यों होगा ! यह तो अपना कर्तव्य ही है ! पर मैं खुद भी यहाँ के स्थानों को नहीं जानता ! कल ही तो सायंकाल बरेली से यहाँ आया हूँ !'

टेरेसा ने कहा—इसकी चिन्ता आप न कीजिए ! मैं यहाँ के रास्तों से परिचित हूँ ! यह तो जान-बूझकर मुझ पर हमला करने के विचार से मुझे गलत रास्ता बताया गया ! वह देखिये। उस रास्ते से यदि मैं लौटी होती तो अब तक अमीनाबाद पहुँच गयी होती, और वह रास्ता हमारे सिविल लाइन्स की ओर गया है ! मैं सीधे रास्ते आयी होती, तो यह सब क्यों होता ! मैंने सोचा थोड़ा बगीचों के बगल से घूमती हुई चलूँ !

वहाँ के मुसलमान माली ने गलत रास्ता बताया ! मुझे आना था पूरब, पर मैं चली गयी एकदम 'वेस्ट' ! वेस्ट को आप लोग हिन्दी में क्या कहते हैं !

'जी, पश्चिम ! कहते हैं।'

'अच्छा तो मैं 'जी पश्चिम' चली गयी !'

'जी पश्चिम नहीं, only पश्चिम !

'Oh I see ! what a fool I am. 'जी' तो शायद आप लोग हर बात में कहा करते हैं। इस word का माने क्या होता है !

'हाँ यानी yes के समान कभी-कभी किसी प्रश्न के उत्तर में, या पुकार होने पर अपनी सावधानता की सूचना देने के लिए भी इसका व्यवहार होता है !

'Oh I see ! अच्छा आपने तो आज मेरी खूब रक्षा की। आप तो—हाँ, आपका नाम क्या है ?

'जी ! मुझे ठेंगा सिंह कहते हैं !

'ठेंगा सिंह ! सिंह तो शायद आप लोग lion को कहते हैं ! सचमुच आपने आज 'लायन' ऐसा ही काम किया ! अकेले इतने बदमाशों से लड़ पड़े। पर ठेंगा माने क्या ?'

ठाकुर ठेंगा सिंह को बड़ी झेंप मालूम पड़ी ! ठेंगा की कौन-सी व्याख्या करें। बोले—जी, ठेंगा माने तो अँगूठा हुआ जिसे आप लोग 'थम्ब' कहती हैं। 'Oh my lord ! Thumb lion. लेकिन यह तो ठीक नहीं हुआ ! Lion's thumb होता तो एक बात भी थी ! शेर का अँगूठा ! या पञ्जा। खैर, आपका नाम बड़ा peculiar है ! वह देखिए अब तो हम लोग बँगले

पर आ गये ! पापा आपसे मिलकर बड़ा खुश होंगे ! आप चाय पीकर तब जाइएगा। आज आपको मेरी वजह से बड़ा 'ट्रोबुल' हुआ !

पर बँगले में उस समय मैजिस्ट्रेट मिस्टर टामस नहीं थे ! वे किसी मित्र के साथ क्लब गये हुए थे ! इसलिए टेरेसा ने स्वयं ही ठाकुर साहब के स्वागत का आयोजन किया और चाय के लिए अनुरोध किया ! पर युवक टेंगा सिंह ने स्वीकार नहीं किया ! बोला–धन्यवाद ! आपकी कृपा का आभारी हूँ ! पर–'

'पर' क्या ! आप शायद हम लोगों का छुआ खाना नहीं खाते ! यही न ? मैं स्वयं ऐसी धार्मिक कट्टरता का हृदय से आदर करती हूँ। मेरे यहाँ कितने ही हिन्दुस्तानी आते हैं जो मेरे पिता के बड़े मित्र हैं, पर वे उनके साथ एक मेज पर बैठ कर फल तक नहीं खाते ! लेकिन पापा उनसे इस बात के कारण नाराज न होकर प्रसन्न होते हैं ! और जो लोग हमें खुश करने के विचार से हमारे साथ हिंदू होते हुए भी 'मटन चाप' और 'केक' उड़ाते हैं, या हमारे जैसी वेष-भूषा ही रखते हैं, उन्हें आप सच मानिये, मैं बिल्कुल ही पसन्द नहीं करती !

ठाकुर टेंगा सिंह युवती की इस बात को मन्त्रमुग्ध की नाईं सुनते रहे ! उन्हें आज यह एक नयी बात मालूम हुई ! कारण अब तक उन्हें स्कूल में यही बताया गया था तथा किसी मासिक पत्र में उन्हें बारम्बार इसी आशय का लेख पढ़ने को मिला था कि छुआछूत का विचार, खासकर भोजन में, रखना हृदय की संकीर्णता का सूचक है ! धर्म से और खानपान से क्या सम्बन्ध ! 'नौ कनौजिया तेरह चूल्हे' की कहावत वे प्रायः ही

सुना करते थे। यद्यपि ठाकुर साहब अपने पितरों की कृपा से अब तक भोजन-पानी के मामले में नवशिक्षित युवकों की भाँति पथ-भ्रष्ट नहीं हुए थे, फिर भी कभी-कभी वे यह सोचते ही थे कि भोजन के बारे में हमारी धार्मिक कट्टरता बहुत ही बढ़ गयी है, उसे आजकल का समय देखते हुए कुछ ढीला करना ही चाहिए! किन्तु आज इस अँग्रेज बालिका के मुख से हिन्दू-धर्म के इस व्यापक प्रश्न की ऐसी सुंदर मीमांसा सुनकर वे दंग रह गये।

टेरेसा उनके मनोभाव को ताड़ गयी। मुस्कुराती हुई बोली—चलिए, कुछ देर ड्राइंग रूम में विश्राम कर लीजिए। वहीं बातें होंगी। आपको कोई जल्दी तो नहीं है ?'

यद्यपि ठाकुर साहब को जल्दी थी, पर वे टेरेसा के मुँह से इस धार्मिक प्रश्न पर और कुछ भी सुनना चाहते थे! इसलिए ड्राइंग रूम के कमरे में घुसते-घुसते ही उससे पुनः प्रश्न किया—'हाँ, आज मुझे आपसे यह एकदम नयी बात मालूम हुई! मैं समझता था कि विदेशी लोग हमारे भोजन की समस्या को उपहास की दृष्टि से देखते हैं! क्या आपने मुझसे जो कहा है वह केवल आपके ही उदार हृदय की बात है, या सभी अँग्रेज आपके ही ऐसा विचार, इस मामले में रखते हैं।

टेरेसा खिलखिलाकर हँस पड़ी। बोली—मुझे आपने उदार बताकर अर्थात् 'लिबरल' कहकर बड़ी उलझन में डाल दिया है। आजकल तो पुराने विचारों, पुरानी रूढ़ियों या धार्मिक कट्टरताओं के न माननेवाले पथ-भ्रष्टों के लिए ही 'लिबरल' शब्द का प्रयोग होता है! 'कंजरवेटिव' शब्द को

कुछ लोग मजाक की दृष्टि से देखते हैं ! चाहे धार्मिक क्षेत्र हो या सामाजिक, साहित्यिक हो या राजनीतिक, सभी क्षेत्रों में नियमों और रूढ़ियों को छिन्न-भिन्न करके मनमाना आचरण करना ही लिबरलपन का लक्षण हो रहा है। हमारे देश में भी यह भाव काफी है, पर आपके भारत में तो यह अपनी सीमा को लाँघता दिखायी पड़ता है ! मैंने भारतीय संस्कृति का विशेष अध्ययन नहीं किया है, पर उसमें मुझे काफी रुचि है। मैंने यों ही कुछ इधर-उधर से अँग्रेजी भाषा में ही लिखी दो चार छोटी-मोटी पुस्तकें इस विषय पर, पढ़ी हैं और मैं कह सकती हूँ कि मेरा वह अध्ययन बेकार नहीं गया। सचमुच आपकी संस्कृति आदर्श है ! अपने देश और अपने धर्म का आदर कौन नहीं करता ! पर मैं निःसंकोच होकर, बिना किसी पक्षपात के कह सकती हूँ कि आपके हिन्दू-धर्म तथा आपकी भारतीय संस्कृति से टक्कर लेने के लिए संसार में कोई धर्म, कोई संस्कृति नहीं है ! हाँ, आपने इस बात पर सन्देह प्रकट किया था कि सभी अँग्रेज आपकी रूढ़ियों को पसन्द करते हैं। पर जहाँ तक मैं जानती हूँ, और यदि आप मेरी जानकारी पर विश्वास करते हैं, तो आप इसे एकदम सत्य मानिये कि शत प्रतिशत भले अँग्रेज आपकी धार्मिक कट्टरता देखकर चकित तथा प्रसन्न होते हैं ! यों बुरे लोग किस जाति में नहीं होते ! हमारी जाति में भी ऐसे व्यक्तियों की कमी नहीं है जिनमें अपने धर्म या आचार-विचारों पर श्रद्धा नहीं है, जो धर्म और ईश्वर को अनावश्यक और फालतू समझते हैं, जिनके लिए दुनिया ही सब कुछ है और eat, drink and be merry

जिनका मूलमन्त्र है ! ऐसों ही के ऊपर हमारी जाति के महान् कवि Wordsworth को लिखना पड़ा कि The world is too much with us फिर भला ऐसे व्यक्ति जो खुद ही नष्ट हो चुके हैं, कब न चाहेंगे कि और लोग भी जो अभी तक ठीक राह पर हैं, नष्ट हो जायँ !'

'वाह ! वाह ! आप तो इस force के साथ बोलती हैं कि यदि आप किसी 'हिन्दू मिशन' की उपदेशिका होतीं तो सारे संसार में हिन्दू-धर्म का ही प्रचार दिखायी पड़ता । आपने एकदम ठीक कहा है कि जो लोग स्वयं बिगड़ चुके रहते हैं, वे कभी नहीं चाहते कि और लोग भी सुधरे रहें । और मजा यह कि इस 'बिगाड़' का नाम उन्होंने 'सुधार' रख छोड़ा है । हमारे यहाँ के सर्वश्रेष्ठ कवि महात्मा तुलसीदास ने भी 'आप गये अरु घालहिं आनहिं' कहकर ऐसे लोगों की अच्छी खबर ली है ।

'हाँ, यही बात तो है ही । पर आपने हिन्दू मिशन की उपदेशिका का पद देकर मेरे साथ अन्याय किया है । मैं ईसाई बालिका हूँ । मैं कब चाहूँगी कि संसार भर में हिन्दू-धर्म फैल जाय और ईसाई धर्म का लोप हो जाय । सच बात यह है कि सभी धर्म अपने-अपने स्थान पर रहें । जो धर्म वास्तव में धर्म होंगे वे समय के अनन्त प्रवाह में तैरते ही रहेंगे, डूबेंगे कभी नहीं । हाँ, जो केवल सम्प्रदाय मात्र हैं और कुछ लोगों की कुटिल नीति का पोषण करने के लिए ही बने हैं वे एक न एक दिन इस धरातल पर से अवश्य नष्ट हो जायँगे । और फिर देखिये न । मैं प्रचार में विश्वास नहीं रखती । जो चीज अच्छी होगी उसका प्रचार अपने आप ही होगा ।

'पर बुरी बात का भी प्रचार तो अपने आप होता है'—ठाकुर साहब ने टोककर कहा।

'हाँ, वरन् यों कहिए कि अच्छी बात के प्रचार की अपेक्षा और भी शीघ्र होता है। क्यों! पर याद रहे उसका अन्त भी उसी शीघ्रता से होता है। अच्छी बात देर में फैले सही, पर वह टिकाऊ होती है। और धर्म के मूल तत्व तो सभी धर्मों में प्रायः समान हैं। दया, अहिंसा प्रेम आदि तो सभी के अन्दर मिलेंगे। पर फिर भी हर एक की अलग-अलग 'विशेषता' होती है। वही विशेषता प्रत्येक धर्म की पहिचान कराने वाली होती है। इस पृथक् 'विशेषता' को मिटाकर जो लोग धर्मों का समन्वय करना चाहते हैं, वे धर्म को वास्तव में मिटा देना चाहते हैं, समन्वय समन्वय चिल्लाना जनता को धोखा देकर अपना कुछ गुप्त मतलब साधना रहता है।

टेरेसा कुछ और कहने जा रही थी कि इतने में मिस्टर टामस की कार ने बँगले में प्रवेश किया। मिस्टर टामस से जब टेरेसा ने ठाकुर साहब का परिचय कराते हुए गुण्डों की शरारत की घटना सुनायी तो वे इस युवक के साहस पर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने ठाकुर साहब के कन्धे पर स्नेहपूर्वक हाथ रखते हुए कहा—टेरेसा आज से तुम्हारी बहन है। तुमने सच्चे भारतीय के कर्तव्य का पालन किया है। मैं पुरस्कार देकर तुम्हारे इस वीरोचित कार्य्य का मूल्य घटाना, उसका महत्व कम करना नहीं चाहता। तुम्हें जब कभी अवकाश मिला करे मेरे यहाँ अवश्य आ जाया करना। मैं तुमसे बातें करके बड़ा प्रसन्न हूँगा।

कहने की आवश्यकता नहीं कि इस उदार उदार हृदय कृतज्ञ अंग्रेज ने ठाकुर साहब के प्रति गु ।ःप से बहुत कुछ उपकार किया। एण्ट्रेंस पास करने के पश्चात् ठाकुर ठेंगा सिंह कालेज की शिक्षा प्राप्त करने लखनऊ आये। मिस्टर टामस ने कालेज के प्रिंसिपल से चुपचाप इनकी शिफारिस करके इन्हें छात्र-वृत्ति दिला दी। ठेंगा सिंह मेधावी थे। प्रथम श्रेणी में विशेष योग्यता के साथ बी० ए० की परीक्षा इन्होंने पास कर ली। मिस्टर टामस ने, इनकी इच्छा के विरुद्ध इन्हें तहसीलदार के पद पर नियुक्त कर दिया। कहने की आवश्यकता नहीं कि कुछ तो अपने परिश्रम और कार्य-दक्षता तथा 'कुछ' मिस्टर टामस की सहायता और कृपा के कारण ठाकुर ठेंगा सिंह दो ही वर्ष में तहसीलदार से डिप्टी कलेक्टर हो गये।

पाठकों यह बात अब तक नहीं बतायी गयी है कि बी० ए० पास करते ही ठाकुर साहब का विवाह रायबरेली के ही एक प्रतिष्ठित जमींदार चौधरी धर उजागर सिंह की कन्या सुयश मालिनी के साथ सम्पन्न हो गया था। दुःख की बात है कि ठाकुर पेंगा सिंह अपने पौत्र का विवाह देखने के लिए तब तक जीवित न थे। वे तो तभी से विवाह के लिए व्याकुल थे जब ठेंगा सिंह ने एण्ट्रेंस पास कर लिया। पर वे यह भी समझते थे कि लड़का जितना ही पढ़ा-लिखा रहेगा विवाह-शादी के बाजार में उसका दाम भी उतना ही बढ़ जायगा। फलतः वे पछा गये। और अन्त में जब ठेंगा सिंह एफ० ए० के द्वितीय वर्ष में ही थे वे संसार से बिदा भी हो गये। ठाकुर ठेंगा सिंह को यह बात बहुत दुःख पहुँचाने लगी और उन्होंने सोचा कि

बी० ए० के बाद विवाह का होना अनिवार्य्यतः आवश्यक है। कहीं ऐसा न हो कि वे भी बेटे का विवाह न देख सकें।

चौधरी घर उजागर सिंह को मालूम था कि लखनऊ के कलेक्टर मिस्टर टामस का उनके भावी जामाता से घनिष्ठ परिचय है। इस कारण वे और भी उत्साहित हुए और काफी दहेज़ देकर उन्होंने धूम-धाम से विवाह किया। विवाह में मिस्टर टामस भी सम्मिलित हुए थे।

और आज जब ठाकुर ठेंगा सिंह को सुयश मालिनी से पुत्र-रत्न उत्पन्न हुआ है और वे डिप्टी कलेक्टर के पद पर नियुक्त हुए हैं, ठाकुर हुँगा सिंह की प्रसन्नता का क्या कहना! टेरेसा ने उनके यहाँ बच्चे के लिए काफी खिलौने उपहार-स्वरूप भेजे हैं। हमारे पूर्व परिचित ज्योतिषी अब इस लोक में न रहे। अतः संगीत के ढंग का नामकरण इस नवजात शिशु का न हो सका। अर्थात् इसका नाम 'रेंगा सिंह' रखने की प्रतिज्ञा का पालन वे न कर सके। पर ठेंगा सिंह ज्योतिषी जी की प्रतिज्ञा की बात सुन चुके थे। अतः बहुत सोच-समझकर बच्चे का नाम रक्खा—ठाकुर रंगनाथ सिंह।

२

करने को दबंगलालजी बी० ए० ने चपला की शिकायत सो कर दी, पर उन्हें अब एक उससे भी भारी भय ने सताना प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने आज बर्रे के छत्ते को छेड़ा है। चपला क्या उन्हें अब यों ही छोड़ देगी! अरे राम राम!

अब न मालूम उनकी कैसी दुर्गति होगी। चपला से वे इतना डरते थे जितना मुसलमानों से कांग्रेसी नेता भी न डरते होंगे! इसी से सेठजी के बारम्बार आग्रह करने पर भी वे उनसे अपनी उदासी का कारण नहीं बतला रहे थे। पर बात उनके मुँह से निकल चुकी थी। उसे लौटाया तो जा नहीं सकता था। म्युनिस्पल बोर्ड का चुनाव तो था नहीं कि जब चाहा अपना नाम वापस ले लिया! अब तो जो भाग्य में बदा होगा वह होकर ही रहेगा।

मुन्शीजी सचमुच भाग्यवादी थे। उनका विश्वास था कि यदि वे यमघण्ट-योग में उत्पन्न न हुए होते तो निस्सन्देह बहुत बड़े आदमी हो गये होते। पर इस यमघण्ट-योग का नाश हो! इसने इन्हें बड़ा धोखा दिया! एक बार एण्ट्रेंस में, दो बार एफ० ए० में और तीन बार बी० ए० में किस वजह से फेल हुए थे! इसी यमघण्ट-योग की वजह से! और दूसरा कारण ही क्या हो सकता था। पढ़ने में किसी से खराब थे नहीं! परिश्रम कम नहीं करते थे! फिर उनकी असफलता का कारण यदि केवल, एकमात्र यमघण्ट-योग को न माना जाय तो किसे माना जाय।

पेट में आये तो नानी मरी, सौरी-घर से निकले भी न थे कि नाना चल बसे! साल भर के हुए तो दादी चल बसीं और पूरे दो वर्ष के भी न हो पाये थे कि दादा दिवंगत हो गये। पाँचवें वर्ष पिता बीमार पड़े। डाक्टर-वैद्यों ने जवाब दे दिया! पर वे बड़े पुरुषार्थी निकले। यमघण्टयोग के चक्कर में आकर भी बेदाग बच गये। रोआँ तक टेढ़ा नहीं हुआ!

पर उसके दूसरे ही साल उनकी पत्नी अर्थात् दबंगलाल की माता सिधार गयीं।

दबंगलाल जब एण्ट्रेंस में पढ़ रहे थे तभी उनके विवाह के लिए लोग दौड़-धूप करने लगे! पर जल्दी किसी लड़की की कुण्डली से इनकी कुण्डली ही नहीं मिलती थी। दूसरे, दबंगलाल विवाह के विषय में दबंग भी थे। अपनी बुआ से कहलाया कि मैं एण्ट्रेंस पास करने के बाद विवाह करूँगा! बुआ ने समझाया—बेटा, घर में कोई स्त्री नहीं है, मैं कबतक यह घर सम्हालूँगी! मेरे यहाँ भी तो मेरे सिवा कोई नहीं है! भइया को इस उम्र में, यद्यपि अभी ४५ के ऊपर नहीं हुए, फिर भी शादी करने की इच्छा नहीं है। वे तेरे कारण ही दूसरा विवाह नहीं कर रहे हैं।

पर भइया ने किया क्या! दबंग के लिए लड़की ढूँढते रहे। उनके नातेदारों में एक के यहाँ एक लड़की थी, घर-गृहस्थी के काम में चतुर! मुंशीजी दबंग के लिए उसे देखने गये, पर स्वयं ही उससे विवाह करके घर लौटे। बुआजी के आश्चर्य का ठिकाना न रहा! बोली—भइया, ई क्या तमाशा किया! खैर, घर तो बस गया। मुंशीजी ने कहा—तब क्या बतासो! दबंगू अभी विवाह करने को तैयार भी नहीं। विवाह करने से उसकी पढ़ाई का हर्ज होगा! इस साल के बाद उसे पढ़ने के लिए प्रयाग भेजने का विचार है। फिर पतोहू हो या लड़की। बिना अपनी पत्नी के कौन किसी की इतनी चिन्ता रखता है। मैं यह समझते हुए भी विवाह के लिए तैयार नहीं हो रहा था, पर मेरे साढ़ू साहब लाला शरारतीलाल ने धूम बाँध के

कल मेरा विवाह करा ही दिया। मैंने भी सोचा चलो अच्छा ही हुआ, ईश्वर जो करता है अच्छा ही करता है।")

दबंगलाल को पिता की इस करनी से हर्ष हुआ या विषाद, यह तो नहीं कहा जा सकता, पर यह अवश्य हुआ कि वे बोर्डिंग हाउस में जाकर रहने लगे और उस साल पहिले साल की भाँति एण्ट्रेंस में फेल नहीं हुए। पहिले साल तो उन्हीं को चूल्हा भी फूँकना पड़ता था। इस साल चूल्हा फूँकने के लिए यद्यपि एक नयी माँ आ गयी थी, पर इससे क्या। उसके साथ ही नयी माँ के एक भाई, तथा उसकी एक चाची ने भी पदार्पण किया। इन लोगों के शोरगुल के कारण दबंग का घर पर पढ़ना नहीं हो सकता था। उसने किसी प्रकार कह सुनकर बोर्डिंग में रहने की अनुमति प्राप्त कर ली।

एफ० ए० और बी० ए० के अध्ययन के लिए तो दबंगलाल को प्रयाग में ही रहना पड़ा! घर से केवल २०) मासिक आता था। दबंग ने स्वयं एक पैसेके लिए घर नहीं लिखा। पर इतने बड़े नगर में पढ़ाई तथा रहन-सहन के व्यय के लिए उस समय भी जब कि आजकल का 'डाइसेरा' नहीं लगा था, २०) रु० पर्याप्त नहीं थे। फलतः मुन्शी दबङ्गलाल को दो तीन ट्यूशन भी करने पड़ते थे। पढ़ना अलग, पढ़ाना अलग। पढ़ाने बैठते थे तो अपने पढ़ने की चिन्ता गला दबाती थी, और जब पढ़ने बैठते थे तो ट्यूशनों के छात्रों के बारे में सोचने लगते थे। परिणाम यह होता था कि न ये ही पास होते थे, और न इनके छात्र ही! हाँ, बी० ए० में ऐसा हुआ कि जिस साल ये फेल हुए उस साल इनके सारे विद्यार्थी पास हो गये,

और जिस साल ये पास हुए, उस साल इनके सब छात्र लौट गये।

बी० ए० पास करने के बाद मुन्शी दबङ्गलाल विवाह करने पर उतारू हुए! इनके पिता ने जिस लड़की से विवाह निश्चित किया था, वह तिलक चढ़ने के तीन दिन पहिले ही मर गयी और भावी ससुर साहब को साँड़ ने ऐसा पटका कि वे कई सप्ताह तक खैराती अस्पताल में अपनी टाँग और पीठ की हड्डी को सुधारते रह गये। हड्डी तो ठीक हो गई, पर टाँग ठीक न हुई। अतएव यमघण्ट योग ने मुन्शीजी को विवाह के मामले में भी खूब धोखा दिया। पर ये इस विवाह के न होने से एक प्रकार से प्रसन्न ही हुए। कारण यह था कि लड़की भी कुछ पढ़ी-लिखी न थी तथा विशेष सुन्दर भी न थी। इस दृष्टिकोण से यमघण्ट ने धोखा देकर भी इनका परोक्ष रूप में उपकार ही किया।

मुन्शीजी को किसी ज्योतिषी ने बताया था कि जब वे २५ वर्ष के हो जायँगे तभी उनका भाग्य चमकेगा और तभी से यमघण्ट योग का प्रभाव भी कम होने लग जायगा। इसलिए मुन्शी दबङ्गलाल ने यही सोचा कि दो चार साल किसी प्रकार बिता लें। उन्होंने नौकरी की खोज करनी प्रारम्भ की! नौकरी खोजने में इन्होंने एड़ी-चोटी का पसीना एक कर दिया, पर नौकरी काहे को मिलती। एक फैक्टरी में इनके लायक कोई जगह खाली थी और वहाँ के अँगरेज मैनेजर को इन पर किसी प्रकार दया आ गयी। उसने इन्हें 'इंटर व्यू' के लिए किसी दिन दोपहर में ठीक एक बजे बुलाया, पर मुन्शीजी

पहुँचे साढ़ेतीन बजे। इस कारण वह नौकरी भी न मिल सकी।

मुन्शीजी का चौबीसवाँ वर्ष चल रहा था। एक वर्ष की और कसर थी उनके भाग्य के चमकने में! कौंसिलों के चुनाव का समय था। कानपुर के सेठ भड़भड़ियाजी को कुछ कार्य-कर्ताओं की आवश्यकता थी। मुन्शीजी को इस बार नौकरी मिल गयी। इन्होंने जी लगाकर काम किया। भड़भड़ियाजी कौंसिल के मेम्बर हो गये। और पचीसवें वर्ष लगते ही मुन्शी जी का साथ यमघण्ट योग ने छोड़ दिया, जिसके फलस्वरूप ये भड़भड़ियाजी के विश्वासपात्र हो गये और अपने छब्बीसवें वर्ष में मुन्शी दबङ्गलाल सेठजी के प्राइवेट सेक्रेटरी बन बैठे।

पर यमघण्ट योग कितना भी दूर क्यों न चला जावे, उसका थोड़ा बहुत प्रभाव तो अवश्य ही पड़ता है। पचीस साल का उसका और मुन्शीजी का परिचय था, वह सेंतमेंत में ही तो भुलाया नहीं जा सकता था। इसलिए मुन्शी दबङ्गलाल को भड़भड़ियाजी के यहाँ भी एकाध बात में कष्ट का अनुभव करना पड़ता था। बात यह थी कि भड़भड़ियाजी की भाञ्जी चपला, सिर से पैर तक चपला थी। वह मुन्शीजी को प्रायः ही तंग करती थी। कभी मुन्शीजी की पीठ पर कोई नोटिस चिपका दिया करती, कभी उनकी जेब में मेढक रख दिया करती। मुन्शीजी बड़े परेशान होते। चपला अपने मामा की बड़ी दुलारी भाञ्जी थी। केवल मुन्शीजी ही नहीं, वरन् कई नौकर-चाकरों और बन्धु-बान्धवों को भी 'चपला' के कारण घपले में पड़ना पड़ता था। बेचारे सेठ धमकलचन्द उजबकराय भड़भड़िया नित्य ही उसकी एक-न-एक शिकायत सुनते और

'यह तो बड़ी आफत है, मेरे तो नाक में दम है' कहकर चुप हो जाते थे। मुन्शीजी को मालूम था कि जो लोग शिकायत करते थे, वे दूसरे दिन दूनी मुसीबत भोगते थे। इसलिए ये चपला की शिकायत करने का साहस भी न कर पाते थे। इस मामले में इनकी सारी दबंगई दुम दबाकर भाग खड़ी होती थी।

चपला यदि किसी को तंग नहीं करती थी तो अपनी गुरुआनी मिस सक्सेना को। मिस सक्सेना का पूरा नाम था कुमारी सरला देवी सक्सेना। ये भी प्रयाग विश्वविद्यालय की ग्रेजुएट थीं। विदुषी, विशारद, विद्याविनोदिनी परीक्षाएँ भी पास कर रक्खी था। अवस्था यही इक्कीस-बाइस वर्ष की थी। एकहरा बदन, गोरा रंग तथा सौम्य स्वभाव था। इनके पिता जो अब इस लोक में नहीं रहे, सेठ भड़भड़ियाजी के मित्रों में थे। इसी कारण सेठजी ने सरला को चपला के पढ़ाने के लिए १५०) रु० पर अपने यहाँ रख लिया था। सरला के चाचा ही सरला के अभिभावक थे, पर वे प्राय: दलाली के काम से एक नगर से दूसरे नगर का चक्कर ही लगाया करते थे। घर में कोई स्त्री न थी। इसलिए सरला के चाचा श्रीमान् जालिम-प्रसाद अपने घर फतेहपुर शायद ही कभी रहते थे!

मुन्शी दबङ्गलाल को बचपन से ही साहित्य से बड़ा अनुराग था। बी० ए० में अंग्रेजी के कवि कीट्स, शेली और बायरन की अनेक कविताएँ आप पढ़ चुके थे। जायसी के पद्मावत तथा बिहारी की सतसई पर आप जी-जान से फिदा थे। आपके सहपाठियों में कई एक को कविता लिखने का भी अच्छा अभ्यास था, पर स्वयं मुन्शी दबङ्गलाल काव्यरचना से

नितान्त अनभिज्ञ थे। कभी रचना करने की चेष्टा भी न की। पर सेठ दमकलचन्द उजबकराय भड़भड़िया के यहाँ उन्होंने जब से मिस सरला सकसेना को देखा, तब से उन्हें ऐसा लगने लगा मानों वे भी काव्य-रचना कर सकते हैं। इसलिए वे जब कभी अपने काम से छुट्टी पाते तो फाउण्टेनपेन और नोटबुक लेकर कुछ लिखने बैठ जाते थे। और तब उनके हृदय के भाव या विकार कभी गद्य और कभी पद्य के रूप में निकलने लग जाते थे। यह बात दूसरी है कि उनमें छन्द-शास्त्रों के लक्षणों का उचित निर्वाह न हो पाता था, या रूपकादि अलंकारों की योजना ही सटीक उतरती थीं, पर वे लिखते अवश्य थे।

चपला को साथ लेकर मिस सकसेना जब कभी उद्यान में टहलने आतीं या कभी-कभी जब वे सेठ दमकल चन्द से चपला के बारे में कुछ कहने सुनने उनके पास आतीं तभी मुन्शी दबङ्गलाल को उनके दर्शन होते थे। और उस समय यह निश्चित था कि मुन्शीजी टाइप करने या हिसाब जोड़ने में कोई गलती अवश्य कर बैठते। इसका कारण मुन्शीजी की समझ में स्वयं ही नहीं आता था। पर ऐसा होता प्रायः हर बार ही था। मुन्शीजी जिस दिन मिस सकसेना को देख लेते थे उस दिन वे हिसाब-किताब या अपने खाने-पीने में कोई गड़बड़ी अवश्य कर देते थे। धीरे-धीरे फिर ऐसा होने लगा कि मिस सकसेना को वे किसी प्रकार एक बार अवश्य ही देख लिया करते थे! कभी डिक्शनरी लेने कभी चपला की पढ़ाई का हाल-चाल लेने, कभी और किसी बहाने वे चपला के कमरे में पहुँच जाते और मिस सकसेना से दो-चार बातें कर लेते।

अब ऐसा होने लगा कि जिस दिन मिस सकसेना से वे दोचार बातें न कर पाते या उनका दर्शन भी न होता, उस दिन मुन्शीजी टाइप करने या हिसाब मिलाने में कोई गल्ती अवश्य कर बैठते।

हाँ तो आज सवेरे से ही मुन्शी दुबंगलाल डर रहे थे कि उन्होंने कल सन्ध्या समय सेठजी से चपला की जो शिकायत की थी, और जिसके फलस्वरूप चपला को कल दो घण्टों तक अपने कमरे में ही रहने की सजा मिली थी, उसका परिणाम मुन्शीजी को अवश्य भोगना पड़ेगा। उन्हें निश्चित विश्वास था कि चपला अबकी बार उन्हें अवश्य ही विशेष रूप से तंग करेगी। खैर, जो होना होगा सो होगा। वे मुँह-हाथ धोकर बैठे ही थे कि नौकर चाय और जलपान ले आया। मुन्शीजी का पनडब्बा भी भरकर वह दे गया। मुन्शीजी ने चाय पी और तश्तरी में से एक बर्फी लेकर मुँह में रक्खी। पर यह क्या यह तो कुम्हड़े या बादाम का स्वाद न था। मुन्शीजी ने घबड़ा कर उसे थुक दिया। मालूम पड़ा जैसे नीम की कडुवाहट से उनका मुँह कड़वा हो। उन्होंने तुरन्त ही स्वाद ठीक करने के लिए समोसे को जल्दी से मुँह में डालकर काटा तो उसमें से फक से गोबर निकल पड़ा। थू-थू करते मुन्शीजी उछलने-कूदने लगे। उन्होंने झटपट कुल्ला किया और पान खाया तथा अपने रूमाल से सिर का पसीना पोंछ उसे कई बार नाक में लगाया। यह क्या रूमाल में भी कुछ अजीब तरह की गन्ध बस गयी थी। बड़ी तेज झक आ रही थी किसी स्मेलिंग साल्ट-ऐसी। मुंशीजी की नासिका ने दनादन एक के बाद एक फायर करना प्रारम्भ कर दिया।

इधर यह सब हो ही रहा था कि चपला बगीचे में से टहल कर लौट रही थी। साथ में मिस सकसेना भी थीं। मुंशीजी समझ गये थे कि इस खुराफात की जड़ में चपला ही है, इसलिए जब चपला ने गम्भीर मुद्रा में मुन्शीजी को नमस्कार किया तो उन्होंने नमस्कार का उत्तर मुँह से नहीं दिया और न हाथ ही उठाया ! पर नासिका ने तोप ऐसी सलामी दे दी। मुन्शीजी ने मिस सकसेना को देखकर प्रसन्नता का अनुभव अवश्य किया, पर इस समय उनका सिर भन्ना रहा था। इसलिए वे अपनी प्रसन्नता का प्रदर्शन करने में असमर्थ थे ! तब-तक चपला ने स्वयं कहा—अरे मुन्शीजी, आपके मुँह में यह काली स्याही कैसी पुती हुई है। मुन्शीजी ने हाथ से होंठ को पोंछकर देखा तो पता चला कि चपला असत्य नहीं कह रही है। पान की ललाई के स्थान पर वहाँ 'ब्लू ब्लैक' स्याही का साम्राज्य था। मुन्शीजी क्रुद्ध मुद्रा में बोले—देखती हैं मिस—आक् छीं—आक् छीं—मिस सकसेना आक् छीं, देखती हैं न चपला की—आक् छीं—शरारत ! कल मुझे उस तरह—आक् छीं—तंग किया और आज इस तरह परेशान कर रही है—आक् छीं—आक् छीं।

चपला ने तुरन्त प्रतिवाद किया—वाह ! मुन्शीजी ! यह आप क्या झूठ बोल रहे हैं। कल भी आपने झूठी चुगली खायी और मुझे सरकस देखने नहीं जाने दिया और आज भी मामा से कुछ शिकायत करने का मनसूबा बाँध रहे हैं।

'हाँ हाँ' ! यह गोबर भरा समोसा और यह नीम की बर्फी तो आज के पहिले—आक् छीं—आक् छीं—कभी नहीं

आयी थी। और आक् छीं—यह स्याही भरा पान और यह मेरे रूमाल में न मालूम—आक् छीं—क्या सेण्ट-फेण्ट—न मालूम किसने भर दिया। यह सब क्या मैंने अपने से किया, या मिस सकसेना कर गयीं या स्वयं सेठजी का इसमें हाथ है।

मुन्शीजी रुँआसे से हो गये। चपला अपनी शरारत पर मन-ही-मन हँस रही थी। उसे अपनी 'स्कीम' की सफलता पर इतना विश्वास न था। पर ऊपर से वह एकदम गम्भीर बनी थी। मिस सकसेना चुप थीं। समवेदना भी नहीं प्रकट कर सकती थीं। पर मन-ही-मन चपला पर वे नाराज अवश्य थीं। उन्होंने मुन्शीजीको नमस्कार किया, पर चलते-चलते उन्हें भी हँसी आ ही गयी। मुन्शीजी बोले—जा रही हैं मिस सकसे—आक् छीं—सकसेना—आक् छीं !!

४

अरे धनेसरा ! मर गया क्या रे ! कब से पुकार रहा हूँ, पर तू मिनकता भी नहीं है ! गया होगा किसी दुकान पर दम लगाने। बाप रे ! ऐसा नौकर तो संसार में ढूँढ़ने से भी न मिलेगा। अरे ओ मुल्लो ! तू भी मर गयी क्या ? बचनू, ओ बचनू, अरे बचनुआ, धत् तेरे की ! सभी बदमाश मर गये।

'क्या हुआ कविजी ! कौन मर गया, कहिये कहाँ से आ रहे हैं इस समय ? बड़ी देर से चिल्ला रहे हैं क्या आप—' बाबू मधुसूदनदास ने अपनी खिड़की से झाँकते हुए पूछा।

'अरे साहब नाक में दम है। जरा-सी लौटने में देर हो जाय, तो कोई दरवाजा खोलनेवाला नहीं ! देखिये, आप तक

की नींद खुल गई, पर ये नौकर और लड़की-लड़के उठने का नाम नहीं लेते। नव साढ़े नव बजा कि नींद चाँपने लगी।'

वाह, महराज! नव साढ़े नव की एक ही रही। कुछ पता है? कहाँ खयाल है आपका? दो बज रहे होंगे दो। साढ़े बारह के बाद तो मैं ही खा-पीकर लेटा हूँ।

'ऐं'! क्या कह रहे हैं आप? दो बज गये। 'मार डाला! इसी से तो मैं भी सोच रहा था कि मामला क्या है जो सबके सब इतनी जल्दी सो गये।

कहिये सिनेमा से लौट रहे हैं? या कहीं दावत-वावत थी— बाबू मधुबनदास ने प्रश्न किया।

'दावत! दावत ही होती तो फिर चिन्ता काहे की थी। चला गया था जरा 'संघ' की बैठक में।'

जरासन्ध की बैठक में? अरे साहब यह कौन-सी नयी बैठक पैदा हुई है? ये जरासन्ध साहब किस मुहल्ले में रहते हैं? बाबू मधुबनदास ने चौंककर पूछा।

'क्यों मजाक कर रहे हैं साहब! मैं तो जाड़े में यहाँ अपने घर से निर्वासित, निरुपाय, असहाय, अकिंचन, अपदार्थ कुकुर-मुत्ता की भाँति खड़ा हूँ, और आपको परिहास सूझा है। किस बेहूदे ने आप से जरासन्ध का जिक्र किया। पहिले अपने कानों की दवा कीजिए, फिर मेरा मजाक उड़ाइयेगा।

वाह भई कविजी, अरे कविवरजी! मैं मजाक क्यों उड़ाऊँगा? मेरा आपसे मजाक का कोई रिश्ता भी तो नहीं है। आप तो इस समय मारे जाड़े और शायद भूख के कारण भी कड़ाही में के बैंगन हो रहे हैं। खैर, आपके जरासन्ध साहब से मुझसे

कोई सरोकार नहीं। सरोकार यदि कोई है तो पड़ोसी होने के नाते आपसे है। वाकई आपको जाड़ा मालूम हो रहा होगा। रफ्फल न हो तो मैं एक दूँ आपको। कमरा तो कोई खाली है नहीं, अन्यथा आपके सोने का प्रबन्ध करा देता। बैठकखाने में तो आप जानते ही हैं कि गुदाम का सारा माल भरा हुआ है भूसेवाली कोठरी अवश्य खाली है, पर खेद है कि उसमें आजकल मेरी महरी सोती है और बकरी भी उसी में बँधी होगी।

'ऐं, आपकी मेहरी भूँसेवाली कोठरी में सोती हैं क्या ? कौन-सा अपराध किया है उन्होंने, इतने कठोर आप कब से हो गये।'

'जनाब, जरा जबान सम्हालकर बोलिए। आप कविता क्या खाक लिखते हैं जो आपको मेहरी और महरी का भी फर्क नहीं मालूम। आप मजाक करते हैं। जाइए मैं आपसे अब सम्भाषण न करूँगा।'

क्यों साहब, अब क्या हुआ—श्रीयुगान्तरजी ने अट्टहास करते हुए कहा—मेरे प्रगतिशील संघ को आपने जरासन्ध की बैठक बताया, फिर यदि गलती से मैं आपकी महरी को आपकी मेहरी समझ लूँ तो आप ऐसे कलाबत्त् क्यों हो रहे हैं।

बाबू मधुबनदास के क्रोध की सीमा न रही ! तड़पकर बोले... अपनी महरी को अपनी मेहरी बनाइये आप। आप कवि लोग सब समर्थ हैं। अभी उस रोज अमुक कवि श्री, जो बड़े दलितोद्धारक बनने का दम भरते थे, मेहतरानी के हाथों पिट गये। आपके मित्रों में ही तो हैं। सोचा था चमाइनों में

सतियाँ नहीं होतीं। मुझे सब मालूम है कि किस प्रकार अख-बारवाले के पैर पकड़कर इस समाचार को छपने से रुकवाया। खा जाइए कसम कि आपने प्रगतिशील संघ का नाम लिया था। आपने जरासंघ कहा, और मैंने जरासन्ध समझा, तो कौन-सा अनर्थ हो गया।'

'और मैंने भी महरी को मेहरी समझ लिया तो कौन सा महा-प्रलय हो गया भाई मधुबनदासजी! जो आप इतने उद्दण्ड हो रहे हैं?'—श्रीयुगान्तरजी ने सरलता और सभ्यता की मूर्ति बनते हुए कहा।

सामने के मकान में मुन्शी दातादीन रहते थे। अवस्था होगी कोई चव्वन वर्ष की। भाँग से काम न चलते देख इधर दो तीन महीनों से उन्होंने अफीम का सेवन भी प्रारम्भ कर दिया था। नशे में धुत्त, चुपचाप चारपाई पर ऊँघ रहे थे कि उनके कानों में कई बार 'मेहरी' और 'जरासन्ध' शब्दों ने घुसकर सचमुच महाप्रलय मचाना शुरू कर दिया। उन्होंने यही समझा कि उनकी मेहरिया को जरासन्ध उठाये लिये जा रहा है। लगे चिल्लाने—'अरे ललाइन! अरे ओ बिटैया की माँ! भाग आओ, भाग आओ। मुझे बुढ़ौती में दूध की मक्खी की तरह मत फेंक दो। मारो घींच के तीन लात जरा-सन्धवा को। मुझसे क्या जरासन्धवा अधिक सुन्दर है? ठहर तो बे, अभी तेरी भुरकस निकलवाता हूँ। कल थाने में रपट कराकर तेरे गाय-बैल कुरुक न करा लिया तो मेरे मुँह में थूक देना। हैं हैं हैं वोट माँगने आये थे बच्चू! मुसपिल्टी के मेम्बर बनेंगे। करनी तो यह है कि महल्ले भर की मेहरिया

भगाये फिरेंगे। जरा सवेरा तो होये द्यो।'

मुन्शीजी यही सब बकते-झकते पुनः ऊँघने लगे। मधुबनदासजीने अपनी खिड़की धड़ाम से बन्द कर ली। पर इतने में ही युगान्तरजी के घर का दरवाजा खुला और वे एक छलाँग में घर के अन्दर दाखिल हो गये।

\+ \+ \+

'अब हमारा-तुम्हारा एक साथ इस घर में रहना नहीं हो सकता। मुझे कल नैहर पहुँचा दो और फिर रात भर जहाँ चाहे चरो खाओ। मुझसे यह रोज-रोज का उपद्रव नहीं सहा जायगा। एक दिन हो तो एक दिन। नित्य का यह चर्खा है। दिनभर काम-धन्धा करने के बाद रात में घण्टे दो घण्टे सोने में भी यह विघ्न। तुम्हें तो नित्य ही कवि-सम्मेलन और 'संघ' में बैठकबाजी करना है, पर मेरा तो इसमें बलिदान हो जाना चाहता है।'

'यह लो, तुम तो सचमुच रुष्ट हो गयी, कुछ सुनोगी भी कि आज क्यों देरी भयी। तुमसे उस दिन कह रहा था न कि इधर एक ट्यूशन के फिराक में था। सो...'

'हाँ, हाँ, तुम तो इधर कई दिनों से इंद्रासन पर अधिकार करने का उद्योग कर रहे थे। सो क्या इंद्र ने तुम्हारे लिए अपनी गद्दी खाली कर दी? कल्पवृक्ष तो तुम्हें भेंट में दे ही दिया होगा!

'यही तो बुरी बात है, तुम तो बस बनाने लग जाती हो। कुछ समझती नहीं कि नौकरी खोजने में कितना परिश्रम उठाना पड़ता है। आज दिन भर चक्कर लगाया। संध्या के आठ बजे

मुझे बुलाया था, मैं ठीक समय पर पहुँच गया, पर रईसों का मामला ठहरा। वे क्या जानें कि कौन कितना बड़ा विद्वान् है। बाबू साहब मुझे घर पर बुलाकर खुद सिनेमा देखने चले गये थे। दस बजे के करीब लौटे तो कहीं जाकर उनसे बातचीत हुई। बड़ा मोलभाव किया। वे रईस लोग तो दाँत से रुपया पकड़ते हैं। चाहते हैं कि मुफ्त में ही काम हो जाय तो सर्वोत्तम।'

'आखिर कुछ कहोगे भी कि कितना महीना देना तय किया।'

'यही तो बुरी बात है, तुम पूरी बात सुनने के पहिले ही जिरह करने लगती हो।'

युगान्तरजी ने पत्नी की उत्सुकता और अधीरता का मन ही मन आनन्द उठाते हुए कहा। 'बाबू साहब तो १५ रुपया से अधिक देने को तैयार ही नहीं हो रहे थे। हैं बड़े भारी घाघ। पर उन्हें यह नहीं मालूम कि यहाँ उनके भी चचा हैं। उन्हें झख मारकर २५) रुपया स्वीकार करना ही पड़ा।

'ओहो। बड़ा कमाल कर दिखाया। ब्रह्मा ने सारी चतुरता और बुद्धिमानी तुम्हारे ही नाम बैनामा कर दी है। २५) रुपया क्या तय करा लिया कि अपने को बृहस्पति ही समझ बैठे।'

'नहीं तो क्या ५००) रु० देते। दस-दस रुपये पर ट्यूशन करने के लिए तो बी० ए० और एम० ए० मारे मारे फिरा करते हैं। स्कूलों और कालेजों में तो एम० ए० पास को चालीस-पचास रुपये पर नियुक्त किया जा रहा है, एक घण्टे के ट्यूशन का १०) रु० नहीं मिलेगा तो क्या जागीर इलाका मिलेगा।'

'पर तुम तो बी० ए०, एम० ए० नहीं हो, फिर तुम्हें क्यों २५) रुपया लिया।'

'हुँह, स्त्री-बुद्धिः प्रलयंकरी। तुम मेरा मूल्य क्या समझोगी। मैं कवि हूँ, और उस पर प्रगतिशील। मेरा एक व्यक्तित्व है। डिग्री नहीं है तो क्या। बड़े-बड़े डिग्रीधारी मेरी रचनाओं का अर्थ खाक नहीं समझते।'

'यही तो बात है। कुछ अर्थ हो तब तो समझें। अर्थ समझ जायँ तब तो तुम्हारी पोल ही न खुल जाय। जब तक अर्थ नहीं समझ पाते तभी तक तो तुम्हारा आदर है। मैं खुद भी तुम्हारी कई कविताएँ पढ़ चुकी हूँ पर एक का भी भाव न समझ सकी। मैं भी एकदम मूर्ख नहीं हूँ। रामायण का अर्थ जितना मैं समझती हूँ उतना तुम नहीं समझ सकते। 'सूर' का भी शायद ही कोई पद हो जिसे मैं न समझ पाऊँ। पर तुम और तुम्हारी मित्र-मंडली जिस प्रकार की कविता लिखती है उसका सिर-पैर मैं तो बिलकुल ही नहीं समझ पाती। न जाने क्या-क्या मौन-निमन्त्रण, मूक-वेदना और टिलमिल-टिलमिल रहता है।'

'समझो कैसे। तुम सब अभी युग के बहुत पीछे हो। यह प्रगति का युग है। भाषा, भाव, दृष्टिकोण सबमें परिवर्तन करना पड़ेगा।'

'अच्छा है, करो परिवर्तन। पैर के सहारे चलना छोड़कर सिर के बल चला करो। मूँछ मुड़ाकर झोंटा रख ही लिया है, अब लहँगा चुंदरी पहनना भी प्रारम्भ कर दो। मुझे नींद लग रही है। अब मैं तो सोने चली। भूख लगी हो और खाने की इच्छा हो तो उसमें, उस कटोरदान में पराठे रक्खे हैं खा-पी लो।'

'तरकारी किस चीज की बनी है।'

'तरकारी के लिए पैसे दे गये थे क्या? मुँह अस मुँह

नहीं, रुपैया मुँह दिखायी। जीभ पाँच हाथ की है। बथुआ और साग है, आज सबेरेवाला।'

\+ \+ \+

दूसरे दिन सवेरे से ही युगान्तरजी विशेष कार्य-व्यस्त दिखायी पड़ रहे हैं। बिस्तर से उठते ही पानी गर्म करके उन्होंने अपनी दाढ़ी बड़ी सावधानी के साथ बनायी। एक-एक खूँटी निकालने में साढ़े तीन तीन मिनट के हिसाब से समय का सदुव्यय किया। फिर खस के साबुन से रगड़-रगड़कर गालों को इतनी बार धोया कि चेहरा टमाटर की तरह लाल हो गया। नहा-धोकर जब खाली हुए तो देखा धोबी के यहाँ से धुलकर धोती अब तक नहीं आयी है। तबतक यह ध्यान आया कि जूता भी गन्दा है। इसलिए हमारे प्रगतिशील युगान्तरजी स्नान के बाद जूते पर पालिस करने तथा धोती में साबुन लगाने बैठे। जूता यद्यपि नया ही था, पर फीता खोल-कर न पहिनने से उसका एड़ी के पास का भाग एकदम उखड़-सा गया था। उसकी सीयन मजे में उखड़ चुकी थी। पत्नीजी से जाकर सूई माँग लाने की हिम्मत न पड़ी। धनेसरा का अब तक कहीं पता न था। बारे जब तक युगान्तरजी कुढ़-बुढ़ाते ही थे कि धनेसरा आया। युगान्तरजी ने झपटकर कहा—अबे, यह तरकारी-सरकारी यहीं बैठके में रख दे और जा दौड़कर एक ठो सूई तो फेंकू की दूकान से लेता आ। कहना पैसा बाद में मिल जायगा।

धनेसरा ने सोचा आज बात क्या है कि मुन्शीजी इतने तड़के उठ गये हैं और नहा-धो भी चुके हैं। ललाइनजी ने भी

आज इतने तड़के तरकारी मँगवायी है। खा-पीकर ये लोग कहीं मेला-बेला में जायँगे क्या ? और अब मुन्शीजी एक सेर सूजी मँगवा रहे हैं। धनेसरा ने एक ठो सूई को 'एक सेर सूजी सुना) बात यह है कि कभी-कभी मुन्शीजी इतनी जल्दी-जल्दी बोलते थे कि सुननेवालों को भ्रम होना स्वाभाविक था। अभी जरासन्ध की घटना तो आप लोग सुन ही चुके हैं। कहा नहीं जा सकता कि युगान्तरजी के शीघ्र भाषण की गलती थी, या पड़ोसी महोदय की श्रवण-शक्ति की क्षीणता का परिणाम था। एक बार तो ऐसा भी हुआ था कि युगान्तरजी ने प्रगतिशील संघ की एक बैठक में भाषण करते समय कहा था 'आज की नारी की अद्भुत सहनशीलता ही हमारे सामाजिक जीवन में प्रतिक्रिया उत्पन्न करेगी।' पर उस वाक्य के कहने के समय वे इतने अधिक जोश में भर गये और कहने में इतनी शीघ्रता कर बैठे कि सुननेवालों को यह वाक्य इस रूप में सुनायी पड़ा—'आज की नारी की छफुट सहनशीलटाई हमारे छामाजिक जोवन में खटिक प्रिया उत्पन्न करेगी।'

हाँ, तो धनेसरा ने सूजी हलवा बनने के अनन्तर प्रसाद का अपने को भी भाग्यशील हकदार समझते हुए जब फेंकू बनिया से एक सेर सूजी देने को कहा तो उसने साफ इनकार कर दिया। बोला—अभी उस दिन पाव भर चीनी गयी थी, उसका दाम तो सात आठ रोज हो गये मिला ही नहीं, आज सवेरे बोहनी के बखत चले मंगाने सूजी, वह भी सेरभर। सेरभर सूजी क्या करेंगे। कोई मेहमान-बेहमान आनेवाले हैं क्या ? एकदम सेरभर। भइया, अब मैं गाहकों को, चाहे वह

कोई भी हो, उधार बाड़ी देना बन्द कर दूंगा। अभी एक महीना हुआ, लाला चौहद्दीलाल तीन सेर गुड़ ले गये थे, पर आज तक उसका दाम नहीं मिला और कल सुनता हूँ कि परसों सन्ध्या समय लाला चौहद्दीलाल जमलोक सिधार गये। ना भइया मैं अब उधार-सुधार के फेर में फँसने से रहा।

पर धनेसरा ने फेंकू के कान में धीरे से कहा—घबड़ाओ मत, मुंशीजी को नौकरी यहाँ के प्रसिद्ध लखपती टनमुनदास के यहाँ लग गयी है, तो फेंकू के शब्द कुछ कोमल हुए। फिर भी उसने दूकान में काफी सूजी रहते हुए भी डेढ़ पाव ही बच जाने की बात कही। धनेसरा ने कहा—लाओ डेढ़ पाव ही सही। जब सेर भर नहीं तो तुम्हारा क्या दोष? जितना है उतना ही तौल दो।'

मुंशीजी जूते पर पालिश करना छोड़ पहले धोती ही साफ करने बैठे थे। ऊपर उनकी पत्नीजी अलग चिल्ला रही थीं—धनेसरा का कहीं पता ही नहीं। आध सेर तरकारी लाने में डेढ़ घण्टा लगा दिया। अजी ए सुनते हो? तुमने तो उसे कहीं नहीं भेज दिया है। तुम्हें भोजन भी आज ९ बजे ही चाहिए और नौकर को भी काम-धन्धा नहीं करने देते।

युगान्तरजी पत्नी के भय से सिर नीचा किये साफा-पानी में दत्त-चित्त रहे। मुँह में पान भरा हुआ था। उन्होंने कुछ 'गूं गूं' ऐसा शब्द किया जो श्लेषालंकार की भाँति दो अर्थी था। पत्नीजी नहीं समझ सकीं कि 'हूँ हूँ' कर रहे हैं कि 'उहूँक उहूँक'। किन्तु इतने में धनेसरा आया और उसने देर लगा देने के कारण मुन्शीजीकी निगाह बचाकर अपनी मालकिन के

हाथ में, ऊपर जाकर डेढ़ पाव सूजी का चोंगा दे दिया।

यह क्या है ? सूजी क्या होगी। इसे किसने मँगाया। और तरकारी कहाँ है। देखती हूँ कि नौकरी अभी कल ही लगी नहीं कि सूजी मैदा सभी मँगवाने लग गये। हलवा बनेगा ? जब इतनी सूजी मँगवाई तो एकाध कनस्टर घी भी मँगवा लिये होते। अब क्या इसे यों ही फाँकने का विचार है ? अब गेहूँ के आटे का हलवा नहीं अच्छा लगेगा। पचीस रुपल्ली का ट्यूशन लगते ही सूजी का मोहन भोग चाहिए महाशयजी को।

महिला-हितकारिणी-परिषद् की एक आवश्यक बैठक दिन में ११ बजे से होनेवाली थी। युगान्तरजी प्रायः ही उसकी बैठकों में सम्मिलित हुआ करते थे ! परन्तु उनकी प्राचीन रूढ़िवादिनी धर्मपत्नीजी को उसका पता न था। जब कभी वे देर से घर लौटते थे तो कोई न कोई बहाना बनाकर काम चला लिया करते ! युगान्तरजी सब प्रकार से प्रगतिशील थे ! अर्थात् बहाना बनाने में भी। ऐसे-ऐसे बहाने बनाते थे कि उनमें सर्वथा मौलिकता दिखायी पड़ती थी ! कभी कहते आज रास्ते में एक पुराने सहपाठी मिल गये। अपने घर पकड़ ले गये। कभी कहते कि रास्ते में रिक्सा उलट गया उसमें एक व्यक्ति घायल हो गया, उसे अस्पताल पहुँचाने चला गया था। कभी कहते आज तुम्हारे मौसेरे भाई मिल गये थे, तुम्हारा कुशल-क्षेम पूछने में उन्होंने दो घण्टे लगा दिये ! सारांश यह कि एक न एक बहाना उनके उर्वर मस्तिष्क को फोड़कर निकल ही आता था।

युगान्तरजी प्रायः घर पर ही रहकर पुस्तकें लिखा करते

थे। सन्ध्या को ४ से ५ तक प्रतिदिन टहलने की अनुमति थी! उनकी धर्मपत्नी का विचार था कि अधिक घूमने फिरने से पुरुषों के बिगड़ने का डर रहता है! अर्थात् इस विषय में वे एकदम महिला-हितकारिणी-परिषद् की अध्यक्षा होने योग्य थीं— नारियों के अधिकार को चरम सीमा तक पहुँचाने में। पर साथ ही यह बात भी थी कि स्वयं भी नहीं घूमती फिरती थीं। उनकी एक सखी स्वयं तो क्लबों की सैर करती थीं, पर उनके पतिदेव घर में बच्चों को बहलाने, कुत्ते को नहलाने, मसाला पीसने आदि का पुनीत कार्य किया करते थे। पर श्रीमती युगान्तरजी इस बात में पुरुषों और स्त्रियों का समानाधिकार स्वीकार करती थीं कि न स्त्री बाहर घूमे फिरे न पुरुष। यदि पत्नी पतिव्रता हो तो पुरुष भी पत्नीव्रती। इसी कारण युगा-न्तरजी को जब कभी विशेष कार्य्य से कहीं जाना पड़ता था तो उसका विस्तृत विवरण धर्मपत्नीजी को दे देना पड़ता था—कहाँ जा रहे हैं, कितने बजकर कितने मिनट पर लौटेंगे। क्यों जा रहे हैं, यदि कोई जलसा है तो उसमें स्त्रियाँ भी उपस्थित रहेंगी या नहीं? स्त्रियाँ रहेंगी तो मर्दों के बीच में विराजेंगी या पर्दे में रहेंगी? आदि-आदि।

युगान्तरजी सिद्धान्त रूप में थे तो पूरे युगान्तर, किन्तु पत्नीजी के प्रताप के समक्ष कार्य रूप में एकदम भीगी बिल्ली बन जाते थे। इसी कारण उन्हें प्रायः ही झूठ का अवलम्बन लेना पड़ता था। युगान्तरजी का विचार था कि बिना झूठ बोले कोई प्रगतिशील हो ही नहीं सकता, कम से कम प्रेम-व्यापार में तो बिना असत्य का पुछिल्ला पकड़े काम ही नहीं चलने का।

इसलिए यद्यपि वे मन ही मन अपनी पत्नी की इस प्रकार की निगरानी को नादिरशाही, डायरशाही आदि अनेक विशेषणों से एकान्त में—मन ही मन विभूषित करने से बाज नहीं आते थे, परन्तु उसके मुख पर मुस्कराते हुए एक न एक झूठ बहाने से ही काम चलाना अच्छा और कल्याणकारी समझते थे।

हाँ, तो युगान्तरजी ने आज के लिए कह रखा था कि उन्हें एक पत्र-सम्पादक ने अपने सम्पादकीय-विभाग में कुछ काम सौंपने के विचार से मिलने के लिए बुलाया है! ट्यूशन तो निश्चित हो ही गया है यदि सम्पादकीय-विभाग में स्थान मिल गया तो कहना क्या! ठीक दस बजे दफ्तर पहुँच जाना चाहिए। और वहाँ से लौटने में दो तीन घण्टों की देर भी हो सकती है आदि आदि।

ठीक ९॥ बजे भोजन से निवृत्त होकर युगान्तरजी घर से बाहर निकल पड़े। हृदय में बड़ी उमंग, बड़ी तरंग, बड़ी धड़कन, बड़ी उछल-कूद थी। आज की बैठक में उन्हें ही अध्यक्ष का स्थान ग्रहण करना है! समानता के इस युग में जब तक महिला-सम्मेलनों में पुरुष तथा पुरुष-सम्मेलनों में महिलाएँ अध्यक्ष न हों, तब तक समानता कैसी? युगान्तरजी इस प्रकार की समानता में घोर विश्वास करनेवाले थे। उसी विश्वास के ऊपर ही एक बार वे किसी बाहरी कवि-सम्मेलन में जाते समय जनाने डब्बे में घुस गये थे और स्त्रियों के शोर मचाने पर कहा था—जब महिलाएँ पुरुषों के डब्बों में यात्रा करती हैं, तो पुरुष महिलाओं के डब्बों में क्यों न यात्रा करें? पर रेलवे के मूर्ख अधिकारियों के दिमाग में यह उचित और तर्कसंगत बात

न समायी और युगान्तरजी को बड़ी डाँट-फटकार सुननी पड़ी ! कुशल यही हुआ कि कर्मचारियों में इनके एक परिचित व्यक्ति निकल पड़े जिससे इनकी अधिक फजीहत नहीं हुई ।

महिला-हितकारिणी-परिषद् का हाल विशेष सुसज्जित है । मन्त्रिणी श्रीमती कुरंगलोचना देवी तथा उप-मन्त्रिणी कुमारी गयन्दगामिनी रस्तोगी आगत व्यक्तियों का स्वागत करने में लगी हैं ! अधिकांश स्त्रियाँ पढ़ी-लिखी, अप टू डेट सुसज्जित पंखविहीन परियों-सी इधर-उधर फुदकती हुई चहल-पहल मचाये हुए हैं । कुछ घूंघटवालियाँ भी हैं जिनके लिए चिक के पीछे प्रबन्ध है । दर्शकों में अनेक युवक भी उपस्थित हैं ! ठीक समय से कार्य प्रारम्भ हुआ । हमारे युगान्तरजी हर्षध्वनि के बीच सभापति के आसन पर विराजमान हुए । कुमारी गयन्द-गामिनीने उन्हें एक पुष्पहार पहिनाया । महिलाओं ने करतल-ध्वनि की । किन्तु चिक के पीछे बैठी हुई स्त्रियों में से एक घूँघट-वाली ने 'छी-छी' कहकर अपना क्रोध प्रकट किया ।

आज की बैठक एक विशेष प्रयोजन से बुलायी गयी थी ! तलाक बिल पर विचार-विनिमय करके अपना मन्तव्य सरकार को बतलाना इस अधिवेशन का उद्देश्य था ! कुछ व्यक्ति हिन्दू-विवाह-पद्धति में आमूल परिवर्तन करना चाहते थे । उन्होंने एक बिल का मसविदा तैयार किया । उसी बिल के सदस्यों को परिषद् के द्वारा महिलाओं का विचार सूचित करना था । यद्यपि सभा में उपस्थित अधिकांश महिलाएँ तलाक-प्रथा के विरुद्ध थीं, तथापि वे पर्देवाली थीं, अतः पुरुषों की उपस्थिति में भाषण करने का साहस उनमें नहीं था ! जो नव शिक्षिताएँ थीं वे भी

तलाक के विरुद्ध ही थी, कारण खुलेआम तलाक की माँग स्वीकार करने में स्त्रियों का लज्जा नामक गुण बाधक हो रहा था, पर दो-चार तलाक के पक्ष में बोलने को तैयार हो गयीं! उन्होंने भाषण दिये और कहा—नारी जाति पर बड़ा अत्याचार हो रहा है, उन्हें पति चुनने का अधिकार मिलना चाहिए! और पति से न पटने पर उन्हें छोड़ देने का भी हक होना चाहिए। स्त्रियाँ बहुत सहन कर चुकी हैं! वे अब पुरुषों की जूतियाँ बनकर न रहेंगी! आदि आदि।'

सबसे अधिक गर्म भाषण दिया श्री युगान्तरजी ने, उन्होंने कहा-'हमारी पुरुष जाति ने स्त्रियों पर अमानुषिक अत्याचार किये हैं? अब समय आ गया है कि वे अपने पापों का प्रायश्चित्त करें! स्त्रियाँ भेड़-बकरी नहीं हैं! यदि माँ-बाप की गलती से उनका विवाह अयोग्य व्यक्ति के साथ हो गया है तो उन्हें अधिकार है कि वे पति को तलाक दे दें। उसी प्रकार पुरुष भी स्वतन्त्र है! वह भी अपनी गँवार अपढ़ और कर्कशा स्त्री को त्याग सकने में स्वतन्त्र है।'

सभा में एक वृद्ध महिला भी उपस्थित थीं? उन्होंने खड़ी होकर कहा—'यह सब कैसी बातें आप लोग बक रहे हैं? कुछ तो ईश्वर को डरिये? आप लोग हमें रसातल में भेजने को क्यों व्याकुल हैं। अंग्रेजी पढ़कर, पुरुष जाति तो अधिकांश में अपने धर्म को तिलांजलि देकर केवल ऊपर से हिन्दू पर भीतर से क्रिस्तान बन ही बैठी है, क्या नारियों को भी आप पथ-भ्रष्ट करना चाहते हैं। स्त्री-शिक्षा के नाम पर, स्त्रियों के सुधार के नाम पर उनका खूब सर्वनाश हो रहा है। वे आज पेरिस की

परियाँ बन रही हैं। सच बात तो यह है कि पुरुषों के बहकावे में पड़कर ही स्त्रियाँ विदेशीय संस्कृति और सभ्यता के पीछे पागल के समान दौड़ रही हैं? हम स्त्रियाँ विवाह को जन्म-जन्मान्तर-सम्बन्ध मानती हैं। हम सब भारतीय महिलाएँ हैं, हम विवाह को मनोविनोद या शारीरिक सुख का साधन मानकर नहीं बैठी हैं, हम पति के स्वरूप में परम पिता परमात्मा की उपासना करती हैं। भाई उम्र में तुम मेरे लड़के से भी छोटे हो, मैं तुम्हें माँ के समान सलाह दे रही हूँ कि और सब चाहे जो करो, पर अपने देश भारत को विलायत मत बनाओ।'

युगान्तरजी पर घड़ों पानी पड़ गया। महिलाएँ इस वृद्धा का ओजस्वी भाषण सुनकर दंग रह गयीं! पूछताछ करने पर मालूम हुआ कि ये वृद्ध महिला नगर के एक प्रमुख नेता की पत्नी थीं, और आज पहिले-पहिल सार्वजनिक सभा में सम्मिलित हुई थीं। ये वृद्धा होते हुए भी पर्दे में रहती थीं। आज जब इन्होंने सुना कि स्त्रियाँ तलाक देने के पक्ष में राय देनेवाली हैं, तो इनसे न रहा गया और ये विवश होकर सभा में आयीं। यद्यपि सभा भवनमें अधिकांश महिलाएँ ही थीं, पर यहाँ कुछ पुरुषों को देखकर, विशेषकर पुरुष को सभापति देख कर ये बहुत ही खिन्न हुईं। महिलाओं ने इनके भाषण की मुक्त-कंठ से सराहना की, यद्यपि उनमें दो एक ने इस वृद्ध महिला की बातों को कूपमण्डूकता कहकर मुँह बिचकाया? कहने की आवश्यकता नहीं कि परिषद् की ओर से तलाक बिल के विरोध में प्रस्ताव पास करके सरकार के पास उसकी नकल भेज दी गयी!

दिन में तीन बजे जब हमारे युगान्तरजी घर लौटे तो

उनकी धर्मपत्नी ने पूछा—अभी दफ्तर से लौट रहे हैं आप ! जगह मिल गयी क्या ?

'कहाँ जगह मिली ! मैनेजर तो मुझे रखना चाहते थे, पर पत्र के सम्पादक का कोई सम्बन्धी भी उस पद के लिए उम्मीद-बार है, फलतः विशेष आशा नहीं ! कल फिर बुलाया है। देखूँगा, कल क्या उत्तर देते हैं।'

'और तलाक-प्रथा के बारे में क्या निश्चय हुआ ?' श्रीमती जी ने कुछ गम्भीरता से पूछा !

'कैसी तलाक-प्रथा।?' कविवर युगान्तरजी अपनी घबड़ा-हट छिपाते हुए बोले।

'क्यों, सम्पादकजी ने तलाक-प्रथा के बारे में आपसे कुछ परामर्श नहीं किया। उनके पास आपके लिए कोई विधवा-सिधवा नहीं है क्या ?'

'क्या वाहियात बक रही हो ! उन्होंने मुझे दफ्तर में जगह देने के लिए बुलाया था, या विधवा-सिधवा के लिए वर ढूँढने को !' युगान्तरजी ने कुछ चिन्तित मुद्रा तथा कुछ बनावटी हँसी के साथ कहा !

'अच्छा तो महिला-परिषद् की उस बुढ़िया की बातों से आप भी सहमत हैं, मैं देखती हूँ कि आप भी तलाक को पसन्द नहीं करते ! पर भई, मैं तो अब सोचती हूँ कि तलाक-प्रथा ही ठीक है।

युगान्तरजी मानो आसमान से गिर पड़े। उनकी सारी कल्पना-शक्ति छू मन्तर हो गयी ! वे समझ ही न सके कि

आखिर उनकी पत्नी को महिला-परिषद् की कार्यवाही का पता चला कैसे !

उनकी पत्नी उनके मनोभाव को ताड़ गयीं। बोलीं—'जी हाँ, आपकी बुद्धि इस बात की मीमांसा करने में असमर्थ ही रहेगी। पर मैं चिक के पीछे, उस सभा में स्वयं उपस्थित थी। कल धोबी को तुम्हारा कुर्ता धोने को देते समय उसका निमंत्रण-पत्र कुर्ते की जेब में पाया था और फिर 'तलाक' की बात सुन कर मैं स्वयं उत्सुक हो गयी। पर यह न मालूम था कि आप ही सभापति होंगे और कुमारियाँ आपको मालाएँ भी पहिनायेंगी। ईश्वर भला करे उस बुढ़िया का जिसने आपके मुख में कालिख पोत दी।'

इसके बाद की घटना मत पूछिए। संक्षेप में यही समझ लीजिए कि मारे लज्जा के युगान्तरजी सन्ध्या के अन्धकार में चुपके से रेल से दबकर मरने के विचार से स्टेशन की ओर चल पड़े। स्टेशन उनके घर से डेढ़ मील पर ही था। वे वहाँ कुछ दूर, अर्थात् स्टेशन से लगभग दो फर्लांग की दूरी पर जाकर पटरी पर लेट गये। घर पर अपनी मेज पर एक चिट्ठी लिखकर रख आये थे, 'मैं आत्महत्या करने जा रहा हूँ ? मैं अपने झूठ बोलने पर बहुत लज्जित हूँ ? मुझे क्षमा करना।'

युगान्तरजी को लेटे-लेटे आध घण्टा हो गया कि इतने में गाड़ी की सीटी सुनायी पड़ी। युगान्तरजी ने निश्चय कर लिया था कि वे मरते समय 'उफ' तक न करेंगे, पर ज्योंही ट्रेन दिखलायी पड़ी, वे उठकर बड़े वेग से भागे ! एकदम सिर पर पैर रखकर, पीछे मुड़कर देखा तक नहीं।

५

'आपका कहना किसी हद तक ठीक है, पर यह मानना ही पड़ेगा कि विवाह की प्रथा में कई प्रकार के संशोधनों की आवश्यकता है! जिस ढंग से कन्याओं के माता-पिता उनका बलिदान कर दिया करते हैं, उसका समर्थन क्या आप हृदय से कर सकती हैं!—मुंशी दबंगलाल ने कुछ उत्तेजित होकर मिस सकसेना से पूछा!

मिस सकसेना कुछ देर तक चुप रहीं! ऐसा मालूम पड़ता था मानों किसी गम्भीर चिन्ता में निमग्न हो गयी हों और ठीक उत्तर ढूँढ़ रही हों।

'देखिए दबंगलालजी, अन्याय का समर्थन तो कोई विचार-शील व्यक्ति नहीं कर सकता। पर हमें इसके पहिले 'न्याय' और 'अन्याय' की परिभाषा भी समझनी पड़ेगी! सम्भव है एक ही वस्तु किसी के विचार से न्याय हो, और किसी के विचार से अन्याय। इसलिए आपकी पिछली बात कि 'कुछ संशोधनों की आवश्यकता है' मैं मान लेती हूँ, पर आपका यह पूर्व कथन कि विवाह-प्रथा में आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है, मैं नहीं स्वीकार कर सकती।

'आखिर आप संशोधन स्वीकार करने को तैयार हुईं। क्या मैं जान सकता हूँ कि कौन-से-संशोधन आप चाहती हैं? कम से कम आप यह तो मानेंगी ही कि माता-पिता को अपने बच्चों की सम्मति भी उनके विवाह के बारे में लेनी चाहिए। पहिले जिस प्रकार पिता अपनी पुत्री का जिससे चाहता था

विवाह कर देता था, और अब भी जिस प्रकार प्राचीन विचार-वाले कर दिया करते हैं, वह वर और कन्या दोनों के लिए घातक है।

मिस सक्सेना मुस्करायीं। वे नई रोशनी के युवकों और युवतियों के मुँह से, तथा कभी-कभी 'महिलामण्डल' के अधिवेशनों में व्याख्यान देनेवालों और 'देनेवालियों' के श्रीमुख से इससे भी उग्र, प्रचण्ड, भीषण, भयावह, लोमहर्षण, लच्छेदार, चटपटी और चुहचुहाती, फिसलती और फुदकती भाषा में वर्तमान विवाह-प्रथा के विरुद्ध, उसकी निरुपयोगिता, निरर्थकता तथा वाहियातपन का नग्न-वर्णन सुन चुकी थीं। अतः मुंशी दबंगलाल के इन शब्दों का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

मुंशीजी कहते ही गये—हमारे देश की कन्याओं से और देशों के पशु भी अच्छे! यहाँ जब चाहा, जिसके हाथ चाहा कन्या को सौंप दिया। ससुराल में पतोहुओं पर जितना अत्याचार होता है, उसे क्या आप नहीं जानतीं। मैकेवाले भी कोई विरोध नहीं करते! घर से निकाल बाहर कर पुनः वे कन्या की खोज-खबर नहीं लेते। उसके सुख-दुःख से वे सर्वथा उदासीन हो जाते हैं, क्या यह समाज के लिए कलंक की बात नहीं? कन्या पराया धन समझी जाती है, पिता की सम्पत्ति में उसका कोई अधिकार नहीं। ससुराल में भी शायद ही उसे कभी अपना हिस्सा मिलता हो। लड़के-भतीजे सब ले लेते हैं। सचमुच भारतीय नारी का जीवन पशुओं से भी गया-बीता है।

मिस सक्सेना मुंशीजी की बातें बड़े ध्यान से सुनती गयीं। पश्चात् कुछ मुस्कराती हुई बोलीं—मैं आपकी इस

सहानुभूति, नारी-जाति के प्रति समवेदना के भावों के लिए आपको हृदय से धन्यवाद देती हूँ, पर एक बात आपको मान लेनी चाहिये कि हमारे समाज का जैसा चित्र सबके सामने उपस्थित किया जाता है, वैसा है नहीं। आपकी बातें कई अंश में एकदम सत्य हैं, पर कई अंश में आप लोगों को वास्तविक स्थिति का ज्ञान ही नहीं है। पहिले वस्तुस्थिति को भलीभाँति जानने का प्रयत्न करना चाहिए। केवल नेताओं की गर्मागर्म स्पीचों को सुनकर ही आपको कोई धारणा न बना लेनी चाहिए।

'एक बात और'—मिस सकसेना कहती ही गयीं -'मैं यह मानती हूँ कि हमारी सामाजिक अवस्था शोचनीय हो गयी है, समाज रोगी हो गया है, उसकी उचित चिकित्सा होनी चाहिए। पर रोग का ठीक-ठीक निदान भी तो हो। और आप यह मानेंगे कि रोग का ठीक निदान करने के लिए, उसे अच्छी तरह पहिचानने के लिए अच्छे चिकित्सक की ही आवश्यकता पड़ेगी, न कि पटरियों पर दाँत का मञ्जन बेचनेवाले या साबुन और तेल के विक्रेताओं को बुलाकर उनसे निदान कराया जाना चाहिए।

'कृपया आप और स्पष्ट रूप में समझाकर कहें। मैं आपकी इस रूपक अलंकार-योजना को नहीं समझ पाया।'—मुंशीजी ने उत्सुकतापूर्वक कहा।

'मेरे कहने का आशय यह है कि समाज की बुराइयों को ठीक पहिचाना नहीं गया है और उचित ढंग पर सुधार नहीं हो रहा है। जिसे आपके अखबारवाले या नेता लोग सुधार कह रहे हैं, वह तो रोग की वृद्धि करने का ही कारण हो रहा

है। जैसे किसी को ज्वर आते ही कोई कह दे कि तुम्हें तपे-दिक हो गया है तो उसे सचमुच ही तपेदिक होकर रहे, या किसी तपेदिक के रोगी को साधारण ज्वर से पीड़ित समझ कर खूब कुपथ्य करने दिया जाय और उसे अच्छी दवाएँ न दी जायँ, तो वह मर जायगा; या ज्वर के रोगी को दमे की दवा और दमे के रोगी को अतिसार की दवा देने से उसका प्राणांत हो सकता है, ठीक वही दशा वर्तमान तथा-कथित सुधार की हो रही है। मुझसे किसी ने कहा था कि एक बार एक फार्मेसी में दाँत और आँख के दो रोगी गये और डाक्टर साहब ने हड़बड़ी में दाँतवाले रोगी की आँख में दवा छोड़ दी तथा आँखवाले रोगी का दाँत उखाड़ लिया। सम्भव है कि इस बात को किसी ने परिहास के ढंग पर प्रसिद्ध कर दिया हो, पर हमारे समाज के कर्णधारों की दशा ठीक उसी डाक्टर के जैसी हो रही है। वे देशोद्धार की उमंग में इतने बेसुध हैं कि उन्हें पता ही नहीं कि कौन से सुधारों की आवश्यकता है, किसके दाँत में दर्द है और किसकी आँखें आयी हैं।

'केवल इतना ही नहीं—'मिस सक्सेना गम्भीरतापूर्वक कहती गयीं "डाक्टरों की हालत तो उतनी बुरी नहीं, पर हमारे नेता या सुधारक नामधारी व्यक्ति तो विचित्र ही ढंग के हो रहे हैं। यद्यपि आजकल चिकित्सा के क्षेत्र में भी पटरी पर दवा बेचनेवालों की ही अधिकता है, जिसे देखिये वही नकली सर्टिफिकेट ले लेकर होमियोपैथ, नेचुरोपैथ और न मालूम कौन-कौन से 'पैथ' बना बैठा है, ईंटा-पत्थर कूट-पीस कर सभी हकीम और वैद्य बने बैठे हैं, फिर भी उनमें कुछ ऐसे भी

चिकित्सक हैं जो वास्तव में आयुर्वेद, एलोपैथी होमियोपैथी की चिकित्साप्रणाली के पूर्ण विद्वान् हैं, किसी गुरु से या किसी कालेज में पढ़कर पूर्ण योग्यता प्राप्त किये हुए हैं। पर जैसा मैंने अभी कहा है समाज और राजनीति के क्षेत्र में तो सभी नेता हैं।

मुंशी दबंगलाल विस्फारित नयनों से मिस सकसेना के उत्तेजित मुखमण्डल को ध्यानपूर्वक देखते हुए बोले—आप कहती चलिए। मैं बड़े ध्यान से आपकी बातें सुन रहा हूँ। आगे आप क्या कहनेवाली हैं उसे सुनने को मैं काफी उत्सुक हूँ।

मिस सकसेना कहती गयीं—वे रोगी को उचित डाक्टरों के हाथों में सौंपें·· इससे उनके दम्भ और मिथ्या अभिमान को धक्का अवश्य लगेगा, जिनकी निगाह में वे डाक्टर बने बैठे हैं, उनकी निगाह में वे गिर अवश्य जायँगे—अपने स्वार्थ और सम्मान-प्रियता के भाव को छोड़ दें तो अभी सच्चे डाक्टरों की कमी नहीं, वे लोग समाज की चिकित्सा मजे में कर लेंगे।

'आखिर आपके वे डाक्टर हैं कौन लोग! कुछ यह भी तो बतलाइये।'

'क्यों नहीं बतलाऊँगी! आप अधीर न हों! जब आपने यह प्रश्न छेड़ा ही है, तो मैं अपने विचारों को व्यक्त अवश्य करूँगी। मैं समझती हूँ कि समाज के वे डाक्टर वे ही लोग हैं जिनके हाथ में समाज अब तक रहा है। वे समाज के फैमिली फिजिशियन या पारिवारिक चिकित्सक हैं। उन्होंने दादा की दवा की है, बाप को भी रोगों से बचाया है, बेटा तो उन्हीं के सामने उत्पन्न हुआ था। बचपन में उसे भी कई बार मृत्यु के मुख से वे निकाल चुके हैं, पर बेटा अब युवक होकर अपने

परिवार के वयोवृद्ध अनुभवी वैद्य पर विश्वास नहीं कर रहा हैं, उसकी श्रद्धा ऐसे डाक्टरों पर है जो उसकी प्रकृति, उसकी नस-नाड़ी से सर्वथा अपरिचित हैं।

'ये नवीन डाक्टर रोगों का नया-नया नामकरण भी कर रहे हैं। बेचारा युवक घबड़ा जाता है। वैद्य कहता है—मैं सावधान किये देता हूँ। तुम्हारे बाप-दादा को मैंने ही मृत्यु के मुख से बचाया है। अब भी तुम्हें बचा सकता हूँ। विश्वास करके मेरे पास आओ न।'

'पर युवक के लिए वृद्ध के पास कोई आकर्षण नहीं। उसकी दृष्टि तो सूटेड बूटेड डाक्टरों, उनकी सजी-सजायी आलमारियों, उनके चमकते यन्त्रों और उनकी चमकती मटकती नर्सों को देख चुकी है। वे लोग मुस्कराते हुए बोलते हैं, सभ्यता का अद्भुत स्वांग करते हैं। बुड्ढे के पास क्या है! पोपला मुँह, क्षीण दृष्टि, फटा हुआ टाट, टूटी हुई चौकी। एक खरल और कुछ गोलियाँ! युवक को यहाँ कोई आकर्षण नहीं दिखायी पड़ता है। बुड्ढे के पास कुछ रोगी भी आते रहते हैं, पर वे भी गरीब देहाती, बुड्ढे! डाक्टर के पास नगर के अनेक प्रतिष्ठित रईस आते हैं।

'और यदि रोग न भी अच्छा हो, रोगी मर ही जाय तो डाक्टर पर मुकदमा कौन चलाने का साहस कर सकता है। इतनी डिग्रियाँ, इतने प्रशंसापत्र, इतने प्रशंसक, इतने अखबार किस दिन के लिए हैं। डाक्टर रोगी के मरने पर यही कहेगा इसने उचित ढंग से दवा ही नहीं की। रोग यदि बढ़ गया तो वह रोगी को ही डाँटेगा। कहेगा तुमने ठीक समय पर दवा

नहीं ली। यदि यह भी कह दे कि तुमने मेरे आदेशों को ठीक समझा ही नहीं; मेरे कहने का यह मतलब था, यह नहीं, जैसा तुमने समझा था, तब भी युवक कुछ नहीं बोल सकता। कारण डाक्टर के हजारों प्रशंसक हैं।

'हाँ डाक्टर रोग के एकदम बढ़ जाने पर यह भी कह सकता है कि अच्छा अब दूसरा नुस्खा लिखूँगा। इससे अवश्य लाभ होगा। कभी कहेगा रोज सवेरे टहला करो। कभी कहेगा नहीं-नहीं। टहलना बन्द करो। यह ठीक न होगा।' किन्तु वह यह कभी न कहेगा कि अच्छा तुम अब किसी और डाक्टर को दिखलाओ। यह तो कम-से-कम वह कभी न कहेगा कि अपने पुराने वैद्य को दिखलाओ। यह भले ही कह दे कि तुम जहन्नुम में जाओ, पर पुराने वैद्य के पास जाने के लिए तो वह कभी कहेगा ही नहीं।

मुंशी दबंगलाल एकटक मिस सकसेना का मुँह ही देखते रह गये। फिर भी इस विषय पर अधिक आलोचना करने को उत्सुक थे। अतः कुछ मुस्कराते हुए बोले—आपतो खासी कव-यित्री हैं। मैं इस प्रश्न को इस दृष्टि से नहीं देख सका था। मैं भी उसी युवक की ही भाँति था। आश्चर्य है कि नवीन शिक्षा के वातावरण में पलकर भी आप वस्तुस्थिति का मार्मिक अनु-भव करती हैं तथा उसे इतनी निर्भीकता के साथ प्रकट करने का साहस भी आपमें है।

अपनी प्रशंसा सुनकर मिस सकसेना कुछ लज्जित सी हो गयी। उनके कपोलों पर हलकी अरुणाभा दिखलायी पड़ी। पर वे बोलीं—मैं ईश्वर का अपार अनुग्रह ही समझती हूँ कि

विदेशीय भाषा और साहित्य पढ़ने पर भी मुझमें भारतीय संस्कार अभी तक अवशिष्ट रह गये हैं। पर देश की वर्तमान अवस्था देख-देख कर मैं सचमुच खिन्न और पीड़ित हो उठती हूँ! विदेशीय ढंग की शिक्षापद्धति में पले हुए सर्वसाधारण तथा उनके मुखिया और नेता भारतीय संस्कृति से एकदम दूर जा पड़े हैं। उनकी कार्यप्रणाली पर आयर्लैण्ड और रूस की स्पष्ट छाप है। उनके गुरु लेनिन, मार्क्स, डिवेलरा और रूसो हैं, हमारे राम, कृष्ण, मनु और याज्ञवल्क्य नहीं। हमारी संस्कृति के क ख ग का भी उन्हें ज्ञान नहीं, हमारी प्राचीन परम्परा, हमारी सुव्यवस्थित सामाजिक रीतियों पर उन्हें तनिक विश्वास नहीं, हमारे भारतीय आदर्शों-क्या सामाजिक क्या धार्मिक—पर उन्हें तनिक भी श्रद्धा नहीं। उन्हें न हो, पर जिन्हें है, उन्हें भी वे मूर्ख समझकर रूढ़िवादी समझकर उपहास का पात्र समझते हैं। धार्मिक तत्वों को बिना समझे ही उनकी अनुदार आलोचना करने बैठ जाते हैं। पर मैं कहती हूँ कि धर्म के विषय में पुराने ढंग के पण्डित लोग ही, जिन्होंने वेदशास्त्रों का गुरुमुख से अध्ययन किया है, प्रमाण हैं।

'मेरा विचार है कि वर्तमान शिक्षाप्रणाली से पुरुषों का जितना अहित हुआ है, उससे भी अधिक अहित नारियों का हुआ है। नारियों ने ही भारतीय संस्कृति को सम्हाल रक्खा है, पति को वे अपना सर्वस्व समझती हैं। पर विदेशीय शिक्षा में पली हुई नारियों में आप बहुतों के अन्दर ये आदर्श विचार न पावेंगे। इन नवीन पढ़ी लिखी स्त्रियों ने कर्तव्य और त्याग से ऊपर, अधिकारलिप्सा, फैशन और विलासिता

को स्थान दे रक्खा है। पुरुष जाति के बिगड़ जाने पर भी उतनी क्षति न थी। स्त्रियाँ सब कुछ सम्हाल लेतीं, पर अब तो देखती हूँ कि स्त्रियाँ भी विदेशीय संस्कृति के पीछे पागल होकर दौड़ने में पुरुषों से भी चार हाथ आगे हैं। हमारा दाम्पत्यजीवन अर्थहीन और नीरस निःसार हो गया है। विदेशों के ढंग पर तलाक और कलह का सूत्रपात यहाँ भी हो चुका है।

'अच्छा तनिक सा रुक जाइये। क्षमा कीजिएगा, मैंने आपके कथन में बाधा डाली। पर क्या पुरुषों का अत्याचार सहते हुए नारियों का चुपचाप मर जाना आपकी सम्मति में अच्छा है। क्या वे ऐसे अत्याचारी पति को त्याग नहीं सकतीं। वे भी कठोर मार्ग का अवलम्बन क्यों न करें?'—मुंशी दबंगलाल ने कुछ उत्तेजित होकर पूछा।

'बस यहीं पर तो संस्कृति की आवश्यकता पड़ती है। हमारी भारतीय संस्कृति अन्य देशों की संस्कृति से भिन्न है। हमारे यहाँ की नारियाँ 'कर्तव्य' को प्रधान मानती हैं, अधिकार को नहीं। "स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः" का मूलमन्त्र उन्होंने हृदयंगम कर लिया है। हमारे यहाँ 'पति' केवल सांसारिक भोग-विलास की पूर्ति, अन्न-वस्त्र का प्रदाता माना जाकर नहीं पूज्य समझा गया है, भारतीय नारी उसे 'देवता' के रूप में पूजती है, साक्षात् परमेश्वर के रूप में। भारतीय नारी के लिए समस्त स्वर्णाभूषणों से बढ़कर माँग का सिन्दूर है। विवाह उसके लिए जन्मजन्मान्तर का संबंध है।

और आप यह भी तो सोचिए कि सभी पति अपनी

पत्नियों पर अत्याचार नहीं करते। जिनमें भारतीय संस्कार वर्तमान हैं, वे तो अपनी पत्नी को प्राणों से भी अधिक प्यार करते हैं। दस पाँच व्यक्ति यदि निकम्मे हों, तो उनके अपराध का दण्ड सारा समाज क्यों भोगे। आप तो अहिंसावादी हैं न। क्या हमारी भारतीय स्त्रियाँ अपने अहिंसात्मक उपायों से क्रूर पति का हृदय परिवर्तन नहीं करा सकतीं। फिर आप पतियों के अन्दर की बुराई पत्नियों के अन्दर भी क्यों भरना चाहते हैं। एक पैर यदि टूट गया हो तो दूसरा पैर भी तोड़ डालना क्या उचित कहा जायगा। तलाक के पश्चात् दूसरा पति जो प्राप्त होगा, वह अत्याचार नहीं करेगा, इसी का क्या प्रमाण? अभी तो पुरुष जातिच्युत होने के भय से या ईश्वरीय दण्ड के डर से अपनी पत्नी को परित्याग नहीं कर सकता, तलाक बिल पास होने पर तो वह नित्य ही दोषों को ढूँढ़ कर तलाक देते हुए नवीन शादियाँ किया करेगा। इस प्रकार घाटे में स्त्रियाँ ही रहेंगी। पुरुष जाति नित्य ही उन्हें अपराधी सिद्ध करके अपनी इच्छाएँ नवीन स्त्रियों से पूर्ण किया करेगी। स्त्रियाँ भी तब वास्तव में अपने सतीत्व से वंचित होकर पशु हो जायँगी। क्षमा कीजिएगा। तब स्त्री और पुरुष दोनों पशु हो जायँगे। हमारा दाम्पत्य जीवन जिसका मूल आधार धर्म है, उस समय अर्थ-प्रधान हो जायगा। व्यभिचार और वर्णसंकरता का ही बोलबाला हो जायगा।

माता पिता भला अपनी कन्याओं की भलाई की बात क्यों सोचेंगे! लड़कियाँ—संसार के छल-प्रपंच और अनुभव से शून्य लड़कियाँ-जब 'लव मैरेज' करेंगी तभी तो उनका दाम्पत्य

जीवन सुदृढ़ और स्थायी होगा ? क्यों ? पर अनुभव बतलाता है कि ऐसे प्रेम विवाह ही सौ में निन्यानवे के हिसाब से दुःखद सिद्ध होते हैं।

'हमारी वैदिक विवाह-प्रथा में विवाह - मण्डप के नीचे अग्नि को गवाह मान कर पति प्रतिज्ञा करता है—हे पत्नी जो तू कहेगी वही करूँगा। हम दोनों के कर्म, मन, वचन एक रहेंगे। हम एक प्राण दो शरीर होकर रहेंगे। अब यदि कोई पति इस प्रतिज्ञा का किसी कारण निर्वाह न करता हो तो आप उस कारण को दूर कीजिए, पति को समझाइये उसे किसी और प्रकार का दण्ड दीजिए न कि पत्नी को बहका कर पति से अलग कर दीजिए।

६

२० मई की घटना है। गर्मी मजे में पड़ने लग गयी थी। स्कूल और कालेज वार्षिक परीक्षा के पश्चात् बन्द हो चुके थे। कलकत्ता के टामसन कालेज के दर्शन शास्त्राध्यापक डाक्टर सुधीर मोहन बागची एम० ए०, पी० एच० डी० ने इस वर्ष गर्मी की छुट्टी मसूरी में बिताने का निश्चय किया था। उन्होंने अपने विचार की सूचना अपने मित्र ठाकुर भुलेटन सिंह, तथा ठाकुर ठेंगा सिंह बी० ए० पी० सी० एस ज्वाइण्ट मैजिस्ट्रेट (कानपुर) को भी दे दी थी। डाक्टर बागची से उक्त दोनों सज्जनों की बाल-बन्धुता थी। उन दिनों जब कि ठाकुर ठेंगा सिंह लखनऊ में अध्ययन कर रहे थे, डाक्टर सुधीर मोहन

बागची भी अपने मामा के यहाँ रहकर लखनऊ में ही पढ़ते थे। ठाकुर ठेंगा सिंह ने बी० ए० में संस्कृत और दर्शन शास्त्र लिया था और ये ही दोनों विषय बागची महाशय ने भी ले रक्खे थे। हाँ ठाकुर भुलेटन सिंह ने गणित और अर्थ-शास्त्र पढ़ना अधिक अच्छा समझा था। उन्हें गणित से अधिक प्रेम था। बस बी० ए० कक्षा की यह मित्रता-इन तीनों सज्जनों के हार्दिक प्रेम को अत्यधिक घनिष्ट बनाने में सहायक हुई।

डाक्टर बागची ने कलकत्ता विश्वविद्यालय से स्वर्णपदक के साथ दर्शन शास्त्र में एम० ए० किया और दो ही वर्षों के पश्चात् रिसर्च (अनुसन्धानात्मक अध्ययन) करके पी० एच० डी० भी हो गये। टामसन कालेज के अधिकारियों ने उन्हें आदर पूर्वक अपने यहाँ नियुक्त किया। कालेज की ओर से एक त्रैमासिक पत्रिका निकलती थी जिसके दर्शन स्तम्भ के आपही सम्पादक भी मनोनीत हुए। आपने उक्त पत्रिका में 'स्वप्न' के बारे में ऐसा सुन्दर निबन्ध लिखा कि बंगाल की दार्शनिक परिषद् ने इन्हें दर्शन-दिग्गज की उपाधि से विभूषित किया। फिर 'अपराधियों के मनो-वैज्ञानिक-विश्लेषण' नामक निबन्ध पर कलकत्ता विश्वविद्यालय ने आपको ५०१ रु० के पुरस्कार तथा 'दर्शन दिवाकर' की उपाधि से सम्मानित किया।

ठाकुर ठेंगा सिंह को ऐसे सम्मानित मित्र पर गर्व था। उन्हें डाक्टर बागची के पत्र द्वारा जब यह सूचना मिली कि वे २० मई को सायंकाल ६ बजे कानपुर पहुँच जायँगे, तो बेहद प्रसन्नता हुई। विद्यार्थी जीवन के पश्चात् केवल एक बार दोनों मित्रों की भेंट पटना में हुई थी, सो भी अकस्मात् ही!

और पटना की घटना को बीते भी ९-१० वर्ष हो चुके थे। केवल पत्र-व्यवहार द्वारा ही दोनों मित्र एक दूसरे के प्रति अपने स्नेह सद्भाव को प्रकट किया करते थे। इस समय बागची महाशय के आगमन के समाचार ने ठाकुर साहब को उल्लास के सागर में निमग्न कर दिया, कारण वे इधर प्रायः अस्वस्थ रहा करते थे, और कई प्रकार की मानसिक चिन्ताओं से भी पीड़ित थे! इधर पिछले तीन चार दिनों से उनकी पसली में दर्द हो जाया करता था और उनके डाक्टर ने उन्हें घूमने फिरने से रोक दिया था। फलतः उन्हें एक मित्र की आवश्यकता थी। वह भी यदि बागची ऐसा बाल्य बन्धु हो तो कहना ही क्या! ठाकुर साहब ने स्वयं कार में स्टेशन तक जाकर अपने मित्र को लिवा लाना चाहा, पर स्वास्थ्य खराब रहने से वे लाचार हो गये और अपने टाइ-पिस्ट मिस्टर शर्मा को अपने बदले स्टेशन भेज दिया।

मिस्टर शर्म्मा, जो शर्म्माजी कह कर सम्बोधित किये जाने पर उतने प्रसन्न नहीं होते थे, जितना मिस्टर शर्म्मा कहे जाने पर, ठीक ५॥ बजे कानपुर स्टेशन पहुँच गये, कारण बागची साहब तूफान एक्सप्रेस द्वारा पधारने को थे और तूफान एक्सप्रेस की कुछ न पूछिए। जैसे आँधी और तूफान के मामले में किसी का वश नहीं, न जाने कब आ जाय, ठीक वही दशा तूफान एक्सप्रेस की भी समझिए। स्टेशन पर सूचना दी जाती है कि आज तूफान मेल ढाई घण्टे लेट है, और आप निश्चिन्त होकर किसी दूकान पर या होटल में अपनी पेट-पूजा का पवित्र कार्य सम्पादित करने बैठ जाते हैं तब तक शोर गुल मचता है कि तूफान मेल का शुभागमन अपने निश्चित समय पर ही हो गया। उसने 'मेक अप' कर लिया और समय पर ही पहुँच गयी। कभी-कभी तो समय के पूर्व भी इस गाड़ी का पदार्पण हो जाता है और कभी-

कभी जब इसके 'लेट' होने की कोई सूचना नहीं रहती, अर्थात् यह भले आदमियों की भाँति अपने निर्धारित समय पर आने को रहती है, तो आपको यह देखकर आश्चर्य होता है कि वह ढाई घण्टे लेट है।

हाँ तो २० मई की घटना है! और दर्शन - दिवाकर श्रीमान डाक्टर बागची महोदय तूफान मेल के सेकेंड क्लास से उतर कर सीधे प्लैटफार्म के बाहर आये। यद्यपि वेषभूषा आपकी सेकेंड क्लास के मुसाफिरों की सी न थी। आपको देखने से यही ज्ञात होता था कि कोई साधारण क्लर्क या देहाती गँवार है! आपके पास न तो बिस्तरबन्द था, न कोई 'अटैची' ही। हाँ एक मोटरी आप बगल में दबाये हुए अवश्य थे। धोती कुर्ता पर हैट सुशोभित था। पाँव में चप्पल और हाथ में एक मोटा सोंटा। कौन कह सकता था उन्हें देखकर कि वे टामसन कालेज में फिलासफी (दर्शनशास्त्र) के प्रोफेसर होंगे और साढ़े सात सौ वेतन भी पाते होंगे।

सो, यदि हमारे शर्माजी उन्हें न पहिचान सके तो इसमें आश्चर्य ही क्या! स्वयं ठाकुर ठेंगासिंह भी एक ब एक उन्हें शायद ही पहचान पाते। आज से नव-दस वर्ष पूर्व जब ठाकुर साहब से उनकी भेंट पटना में हुई थी उस समय डाक्टर बागची विलायती कपड़ा 'सूट' पहनते थे और मुखमण्डल एकदम सुचिक्कण और सपाट रखते थे। और आज इस समय तो किसी फौजी ब्रिगेडियर की भाँति भयावनी मूँछ के साथ विशाल दाढ़ी भी बढ़ा ली थी।

श्रीशर्माजी ने इनकी वेषभूषा और इनके साथ के सामान से यदि इन्हें किसी कम्पनी का कोई साधारण कर्मचारी समझा हो तो कोई आश्चर्य नहीं। कम से कम उन्हें प्रोफेसर समझने की भूल तो वे कर ही नहीं सकते थे। फिर उन्हें सेकेण्ड क्लास के डब्बे

से उतरते देखा भी नहीं था। यद्यपि उतरे थे डाक्टर बागची द्वितीय श्रेणी के ही डब्बे से। बात यह है कि जब गाड़ी प्लेटफार्म पर आयी तब श्रीशर्म्माजी किसी 'टी स्टाल' पर चाय की चुस्की ले रहे थे। उनके प्लेटफार्म पर पहुँचने तक प्रायः सभी यात्री गाड़ी से उतर चुके थे।

शर्माजी ने इसी कारण डाक्टर बागची को डाक्टर बागची नहीं समझा। तब भला डाक्टर बागची ही शर्माजी को शर्माजी कैसे समझ लेते! वे तो कुछ देर तक ठाकुर ठेंगासिंह की प्रतीक्षा करते रहे पर उन्हें प्लैटफार्म पर उपस्थित न देख धीरे-धीरे फाटक की ओर बढ़े। कई कुलियों ने आपकी गठरी ढोने के लिए आपसे अनुमति चाही, परन्तु आपने किसी प्रकार उन लोगों को अनुमति न दी! एक कुली ने तो तीन ही पैसे लेकर गठरी पहुँचाना स्वीकार किया, फिर भी आपने उसे डाँटकर दूर भगा दिया!

यह बात नहीं कि डाक्टर साहब कृपण हैं और सदैव अपने से ही सारा सामान ढोते हैं। यह तो उनके 'मूड' की बात है! आज स्वयं ही गठरी ढोने का 'मूड' आ गया था! एक बार तो रईसी का ऐसा 'मूड' आया था कि केवल अपनी छड़ी और 'हैट' ढोने के लिए आठ आने पर एक कुली किया था। 'टिकट' को स्वयं हाथ में सम्हालना उन्हें बड़ा बोझ मालूम पड़ा, सो टिकट भी उसी कुली को थमा दिया था। प्लैटफार्म को पारकर फाटक पर पहुँचने पर आप जो घूमकर देखते हैं तो टिकट, छड़ी और हैट सहित कुली महाशय अन्तर्धान हो चुके हैं। जिससे कहते—मेरा टिकट कुली के पास है, और उसी के पास मेरा हैट भी है—वही इनकी खूब दिल्लगी उड़ाता! उस बार उन्हें पूरा "चार्ज" देकर ही छुट्टी मिली।

डाक्टर बागची पूरे दार्शनिक हैं। यों तो घर पर भी आपके

बहुत से काम ऊटपटाँग ही होते हैं परन्तु रेलयात्रा में तो कुछ न पूछिए। इनकी पत्नी इसी कारण इनकी यात्राओं से बहुत घबड़ाती हैं। जब घर में यह दशा है तो बाहर परदेश में ये क्या करेंगे। कैसे खायेंगे पीयेंगे! किसी परिचित से लड़ तो न पड़ेंगे? किसी अपरिचित के यहाँ तो जाकर न टिक रहेंगे! पत्नी इनकी दार्शनिकता से ऊब चुकी है। अधिक क्या कहा जाय, इसी से समझ लेना चाहिए कि एक बार ये बच्चे को गोद में लिये बरामदे में घूम रहे थे। नौकरों की हड़ताल थी। धर्मपत्नी ने कमरा बुहार कर कूड़े की टोकरी इन्हें थमा दी और बाहर चबूतरे पर कूड़ा डाल आने को कहा। डाक्टर साहब ने टोकरी ले ली! बाहर चबूतरे पर बच्चे को रख आये और वापस आकर पत्नी को कतवार की टोकरी पुनः थमा दी।

एक बार डाक्टर बागची कलकत्ता से काशी-विश्वविद्यालय में भाषण करने काशी आ रहे थे। रात के दस बजे मोगलसराय पहुँचे। यहाँ गाड़ी बदलनी थी। उसी समय मोगलसराय से एक गाड़ी कलकत्ता के लिए छूटती थी। आप भूल से कलकत्तावाली गाड़ी में ही सवार हो गये। और बिस्तर बिछाकर लेट रहे! सबेरे जब आपकी नींद खुली तो आपने अपने को काशी के बदले पुनः कलकत्ता में पाया।

दूसरी बार आप लाहौर जा रहे थे। आपने ट्रेन में बैठकर किसी स्टेशन पर केले खरीदकर उन्हें खाना प्रारम्भ किया। एक बार आपने गूदा फेंककर छिल्कों को ही मुँह में डाल लिया। जब पास में बैठे हुए दूसरे यात्री ने इस गल्ती की ओर इनका ध्यान आकृष्ट किया तब कहीं इन्हें अपनी गल्ती मालूम पड़ी। पर आपने उसी समय उससे भी अधिक गल्ती कर डाली। वे अपने नकली दाँत निकाल कर तब कुछ खाया पिया करते थे। आपने किया

क्या कि छिलकों के साथ ही उन दाँतों को भी खिड़की के बाहर फेंक दिया। पर गाड़ी चल रही थी, इसलिए वे दाँत पुनः मिल कैसे सकते थे।

तीसरी घटना भी रेलवे-यात्रा सम्बन्धिनी ही है! आप बाल-बच्चों के साथ पूजा की छुट्टी में ढाका जा रहे थे! इस बार ट्रङ्क और सामान काफी था। बच्चे अपनी माँ के साथ जनाने डब्बे में बैठे थे। ट्रङ्क आदि सामान डाक्टर साहब के साथ था! आप ढाका में उतरे। कुलियों के सिर पर सामान लदवाकर जब फाटक की ओर बढ़े तो कुलियों ने कहा—मजे में देख लीजिए कि कोई सामान उतरने से रह तो नहीं गया है, तो आपको लगभग दस मिनट तक सोचने के बाद यह ध्यान आया कि आपके बाल-बच्चे उतरने से रह गये हैं। कुशल हुआ कि ट्रेन छूटने में अभी एक या डेढ़ मिनट की देर थी, जिससे बाल-बच्चे किसी प्रकार उतर आये।

आप कह सकते हैं कि ट्रेन की यात्रा में आदमी प्रायः भीड़-भाड़ या परेशानी के कारण कुछ भूलें कर ही बैठता है। घर पर ऐसी असाधारण गलतियाँ कोई भी, चाहे वह कितना ही बड़ा दार्शनिक क्यों न हो, कभी नहीं करेगा। पर डाक्टर बागची इस नियम के अपवाद हैं। वे घर पर भी ऐसी ही, वरन् इनसे भी बढ़कर भूलें कर बैठते हैं। आपके घर में एक बकरी थी। एक दिन आँगन में एक चारपाई खड़ी करके रक्खी थी। बकरी उसकी उसकी ओर पीठ करके खड़ी थी जिससे उसकी पूँछ चारपाई की सुतरी में से छेद के बाहर उस ओर दिखायी पड़ रही थी। डाक्टर साहब कालेज से पढ़ाकर लौटे तो इस बात की ओर उनकी दृष्टि पड़ी। वे आश्चर्य से भरकर सोचने लगे—समूची बकरी तो छेद के अन्दर से इस पार आ गयी, किन्तु उसकी पूँछ क्यों न आ सकी, उधर ही कैसे रह गयी।

डाक्टर बागची भोजन पानी के बारे में भी उदासीन रहते हैं। कभी दिन भर केवल चाय पीकर ही रह जाते हैं। कभी दिन में ६ बार भोजन करते हैं। कभी दिन में तीन बार शौच होते हैं, कभी तीन दिन पर एक बार। आप भोजन करके उठ जाते हैं, पर यदि कोई आपसे पूछे कि आपने आज क्या खाया तो आप न बता सकेंगे, कारण भोजन करते समय आप स्वप्न-विज्ञान के बारे में कुछ समस्याएँ हल करते रहते हैं।

खैर जब डाक्टर बागची ने दस मिनट तक प्रतीक्षा करने के पश्चात् देखा कि कोई भी उन्हें रिसीव करने नहीं आया और एक मोटरकार जो अबतक खड़ी थी, वह भी खाली ही लौट गयी तो आप इक्के और ताँगेवालों की ओर बढ़े। इक्केवालों ने इन्हें परदेशी समझकर यही समझा कि अच्छा शिकार मिला। इनसे एक के चार वसूल होंगे, पर जब एक बूढ़े इक्केवान ने समझाया कि देखते नहीं हो, गठरी तो खुद लटकाये हुए हैं, हैट-सैट से क्या होता है, तो सबका उत्साह ठंढा पड़ गया।

७

लोगों का कहना है कि बड़े-बड़े महापुरुष लोग साधारण बातों को याद नहीं रखते। चाहे वे दार्शनिक हों, कवि हों, नेता हों या और कुछ। तो यदि ऐसे लोगों के कथनानुसार डाक्टर बागची ऐसे महापुरुष साधारण बातें न याद रक्खें तो देश या जाति का कौन-सा अहित हो जायगा। पर देश या जाति का अहित हो या न हो स्वयं उनका अहित तो हो सकता है। सकता क्या! होता ही है! सकने का तो कोई प्रश्न ही नहीं।

डाक्टर बागची का इस समय जो अहित हुआ वह साधारण

न था। वे इस आशा में थे कि कोई उन्हें रिसीव करने स्टेशन आवेगा। सो उनकी वह आशा व्यर्थ प्रमाणित हुई। इसी आशा के बल पर कहिये, या अपनी स्मरण शक्ति या प्रवृत्ति के कारण उन्हें ठाकुर ठेंगासिंह के घर का पता याद रखने की आवश्यकता का अनुभव नहीं हुआ था। इक्केवानों ने जब प्रश्न किया कि वे कहाँ जावेंगे तो वे बड़ी उलझन में पड़े। घर का पता प्रायः ही ठाकुर साहब की चिट्ठियों में लिखा रहता था, पर उन्होंने उसे कभी ध्यान से पढ़ा ही न था। जब उन्होंने उत्तर देने में काफी विलम्ब किया तो इक्केवान भी चकराये। उन्होंने उन्हें कोई शराबी या पागल समझा। तब तक और भी यात्री आ चुके थे और उन्हें लाद-लादकर ताँगेवालों ने अपने ताँगे बढ़ाये। अब केवल दो ही एक एक्केवान रह गये थे। उनमें से एक ने, जो काना और शरारती था कुछ मज़ाक के ढंग से पूछा—कहिये हुजूर, कहीं कोठे पर जाइयेगा?

'कोठे पर' का लाक्षणिक अर्थ बेचारे दर्शन-शास्त्र के डाक्टर क्या समझें। फिर यू० पी० का कोई दार्शनिक होता तो समझ भी जाता। पर डाक्टर बागची को इस वाक्य के सहारे यह अवश्य याद हो आया कि उनके मित्र ठाकुर ठेंगासिंह के पत्रों में पता के स्थान पर कोठी ऐसा कोई शब्द अवश्य दिखलायी पड़ा था। उन्होंने समझा कि 'कोठी' कोई मुहल्ला होगा। इसलिए वे प्रसन्नता से बोले—हाँ हाँ कोठे पर जायगा। शो जल्दी करो।

जब कि यू० पी० में कई पीढ़ी से रहनेवाले बंगाली हिन्दी के लिंग भेद को नहीं समझ पाते तो कलकत्ता का दार्शनिक कोठी और कोठे का अन्तर कैसे समझता। इसी से जब डाक्टर साहब ने उस काने और मसखरे इक्केवान के प्रश्न के उत्तर में सरलता-पूर्वक हामी भर दी तो और सब इक्केवान खिलखिलाकर हँस

पड़े। यद्यपि डाक्टर बागची को इस हँसी का कोई प्रत्यक्ष कारण समझ में नहीं आया, तथापि वे यह समझ गये कि इक्केवाले उन्हें बना रहे हैं। कारण बनाये जाने का थोड़ा बहुत अनुभव ऐसे सरल दार्शनिक व्यक्ति को भी दो-चार बार कालेज के अन्दर हो चुका था। पर उन्हें तुरन्त ही स्मरण आया कि उन्हें डिप्टी साहब के यहाँ जाना है। इसलिए वे बोले कि डिप्टी साहबवाले कोठे पर ले जाने का क्या भाड़ा लेगा।

काने एक्केवान को इस प्रश्न से बड़ा आश्चर्य हुआ। यद्यपि वह यहाँ के कई डिप्टियों के बँगलों को जानता था, पर वह उनके बँगले पर उनके मुहल्लों के नाम के सहारे ही सवारियों को पहुँचाता था। पर वह एक और गुप्त बात भी जानता था, जिसके कारण ही उसे इस प्रश्न पर आश्चर्य हुआ। बात यह है कि कानपुर के एक डिप्टी साहब चोरी-चोरी एक वेश्या के कोठे पर प्रायः आया-जाया करते थे। पर यार लोगों को यह बात मालूम थी और इसी-लिए उस वेश्या के मकान को लोग आपस में 'डिप्टीसाहब-वाला कोठा' कहा करते थे! उस वेश्या के घर पर किसी का खून हो गया था और जाँच के सिलसिले में ही डिप्टी साहब वहाँ एक बार गये थे। पर तब से वे अनेक बार वहाँ गुप्त रूप में भी आ चुके थे। यह बात: बहुतों को मालूम थी, जिनमें से एक्केवान महाशय भी थे। कारण लखनऊ, कानपुर ऐसे नगरों के इक्के और ताँगेवालों में से अधिकतर इन अड्डों से परिचित और एक प्रकार से उनके दलाल हुआ करते हैं। पर काने महाशय ने कई कारणों से डाक्टर साहब को खतरनाक आदमी समझा। कौन जाने यह शराबी या पुलिस का आदमी हो। वह किसी बहाने अपना एक्का लेकर वहाँ से चलता बना।

अब केवल एक बुड्ढा इक्केवान रह गया था जो भाग्यवश

बहरा था। डाक्टर बागची ने उससे बारम्बार ज्वाइण्ट मैजिस्ट्रेट के बँगले पर पहुँचाने को कहा, पर वह इनकी बात भी न समझ सका। समझता भी कैसे। इक्केवानों तथा साधारण जनता की भाषा में ज्वाइण्ट मैजिस्ट्रेट बेचारे ज्वाइण्ट मैजिस्ट्रेट रह ही नहीं जाते। वे विशुद्ध 'जण्ट' बन जाते हैं। 'जण्ट साहब' कहिए, एक मूर्ख भी समझ जायगा। अँधेरी मजिस्ट्रेट या अँधेरी कचहरी कौन नहीं समझता! सभी एक्केवान 'रायबरेली' जानते हैं, 'लाइब्रेरी' नहीं। आर्टस् कालेज को उन्होंने आठ कालेज बना रक्खा है। और उसके आगेवाले कालेज को नव कालेज, फिर दस कालेज। 'आर्टस् कालेज' कहने से वे आपका अभिप्राय तो समझ ही जायँगे कि आप उनसे 'आठ कालेज' चलने को कह रहे हैं, नव कालेज को नहीं। पर ज्वाइण्ट मैजिस्ट्रेट से आपका 'जण्ट साहब' से मतलब है, यह वे बेचारे नहीं समझ सकते! आपको भी जण्ट साहब ही कहना पड़ेगा, तभी वे समझ सकेंगे और तभी आप अपने गन्तव्य स्थान को जा भी सकेंगे अन्यथा आप ज्वाइण्ट मैजिस्ट्रेट के नाम की दुहाई दिया कीजिये, सब बेकार है।

बहुत देर बाद जब डाक्टर बागची ने इस बुड्ढे बहरे एक्केवान को समझाया कि उन्हें डिप्टी कलेक्टर ठाकुर बुलेटन सिंह के घर पर जाना है तो वह प्रसन्न होकर बोला—'आपने हजूर पहिले ही क्यों नहीं कहा कि डिप्टी साहब के यहाँ जाना है।'

आजकल डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस अर्थात् कोतवाल को भी उनके नौकर चाकर डिप्टी साहब कहकर पुकारते हैं। इसलिए इक्केवान ने जो कोतवाल साहब के मकान के पास ही रहता था, यही सोचा कि उन्हीं डिप्टी साहब के यहाँ बाबू साहब जा रहे हैं! वह अभी तक गाँजा नहीं पी सका था, इसलिए अपने घर के पास ही सवारी को पहुँचाना है, यह सोचकर वह बड़ा प्रसन्न हुआ?

जब प्रायः आधा रास्ता तय किया जा चुका था तो हमारे स्वनामधन्य डाक्टर बागची ने इक्केवान से पूछा—ओ जी एक्के-वानवाला, तुम डिप्टी साहब का मकान देखा है न। ठीक ठेकाने पर पहुँचा सकेगा?

इक्केवान ने पहले तो कुछ सुना ही नहीं। दूसरी बार पूछने पर समझा कि बाबू साहब कह रहे हैं कि 'जोर से एक्का हाँको।'

यह समझते ही वह कुछ नाराज़ होकर बोला—क्या करें बाबू साहब घोड़े की जान ले लें क्या! आखिर जानवर है। कोई तूफानमेल थोड़े ही है। फिर भी इसके ऐसी चाल कानपुर में सौ दो सौ घोड़ों में आप न पावेंगे हुजूर। अभी अभी तो जाता है। खुद डिप्टी साहब कभी-कभी कचहरी से इसी अदने के एक्के पर चले हैं शाम के ५॥ बजे और सूरज डूबने के पेश्तर दौलतखाने पर आकर नमाज़ पढ़ी है।

डाक्टर बागची बड़े चकराये। ठाकुर ठेंगा सिंह से नमाज़ से क्या मतलब। अवश्य इस बुड्ढे को भ्रम हो गया है। इसने डिप्टी साहब का नाम और मकान समझे बिना ही एक्का हाँकना शुरू कर दिया था। और यह किसी मुसलमान डिप्टी के यहाँ ले जा रहा है। ठाकुर ठेंगा सिंह तो कचहरी से लौटकर अपने घर पर या पास की ही व्यायाम शाला में व्यायाम किया करते हैं। ऐसा उन्होंने अपने किसी पत्र में लिखा भी था! ओह अब याद आया! उन्होंने यह भी लिखा था कि कानपुर में यद्यपि एक बहुत बड़ा व्यायामशाला छत्रपति शिवाजी के नाम पर है, पर दूसरा एक व्यायामशाला उनके मुहल्ले के लोगों ने उनके नाम पर ठाकुर व्यायामशाला करके खोल रक्खा है! कानपुर के अनेक व्यक्ति शिवाजी की व्यायामशाला को बड़ा व्यायामशाला तथा डिप्टी साहब की व्यायामशाला को छोटा व्यायामशाला कहते हैं।

सो जब बूढ़े इक्केवान को यह मालूम हुआ कि उसके एक्के पर विराजमान बाबू साहब उसके परिचित डिप्टी साहब अर्थात् खाँ बहादुर सुल्तान अहमद के यहाँ न जायँगे वरन किसी और डिप्टी के यहाँ, तो वह बड़ा ही हताश हुआ और कुड़बुड़ाने लगा ! "वाह हुजूर आपने तो इस गरीब को एकदम मार ही डाला आपने पहले ही क्यों नहीं साफ २ बता दिया कि आपको किसके यहाँ जाना है ! अब भला बताइये, मैं जब चन्द कदम के फासले पर रह गया तो आपने दूसरा ही राग अलापना शुरू किया ! किस मुहल्ले ले चलूँ अब आपको, जल्दी बोलिए न ?

डाक्टर बागची स्वयं उलझन का अनुभव कर रहे थे ! मुहल्ला मुहल्ला वे क्या जानें। पर छोटा व्यायामशाला की याद उन्हें हो आयी थी। इसी को अपना अहोभाग्य समझकर कुछ मुस्कराते हुए वे मधुर स्वर से बोले—अरे ओ मियाँ जी ! आप खाफा क्यों होना माँगते हैं, शे होम तो पहिले ही बोल दिया था आपसे शे जे होम डिप्टी ठेंगा सिंह के घोरे जायेगा, शे आप कुछ जे ऊँचा सुनता है, माफ करना बाबा शत्य बात शे कहना पड़ता है, शे आपने शुना नाई। शे ओब आप शोई खाने चल। होम जो द्रव्य आप बोलेगा शे देगा तो।

किन्तु बुड्ढे ने उनकी बात का अधिकांश समझा ही नहीं। 'माफ करना', 'देगा' और 'ऊँचा सुनता है'—केवल ये ही तीन बातें वह साफ-साफ सुन और समझ सका। इनमें से दो बातों पर तो वह बेहद प्रसन्न और शेष एक बात पर वह बेहद रुष्ट भी हुआ। वह अजीब ढंग से हाथ चमकाते हुए बोला—'या खुदा, मैं ऊँचा सुनता हूँ तो आपका क्या ? आप भी कभी जईफ होंगे। आपका जिस्म भी, हुजूर, इसी मानिन्द हमेशा फौलादी न बना रहेगा। सभी के दाँत टूटते और बाल सफेद होते हैं। सभी के

आँख कान जवानी के माफिक दुरुस्त नहीं रहते। जनाब आप कहते क्या हैं ? मैं किसी को बददुआ नहीं देता। खुदा सबकी तन्दुरुस्ती सही सलामत रक्खे। मगर हुजूर, देखा मैंने यही है कि एक-से-एक अपने को पहलवान लगानेवाले अईफी में चें बोल गये हैं। वह रौनक चेहरे पर न रह गयी। कोई बहरा हुआ, तो कोई लँगड़ा। आप कहते हैं माफ करो। आप ठहरे दौलत-मन्द लोग, बाबू लोग। हम आपको माफ करने काबिल होते तो इक्का क्यों हाँकते घूमते। हम भी बड़ा-सा टोप लगाकर इधर उधर मटरगश्ती करते। आप देंगे रुपया बारह आना, और क्या देंगे। कोई जागीर तो बख्श न देंगे। आज निहायत तक-लीफ हुई। न मालूम किस कमीने का मुँह देखकर उठा था कि अब तक नशापानी भी नसीब न हो सका। अच्छा जनाब अब भी जल्दी बोलिये कि आपको कहाँ ले चलूँ।'

डाक्टर बागची दर्शनशास्त्र की महत्ता और जीवन की क्षण-भंगुरता पर प्रायः ही व्याख्यान दिया करते थे परन्तु ऐसा ओजस्वी धारा-प्रवाह भाषण शरीर की नश्वरता पर उन्होंने न कभी दिया था न किसी को देते सुना था। वे इस समय शास्त्र-चर्चा के 'मूड' में न थे नहीं तो वे भी कुछ न कुछ कहते अवश्य। उन्हें देर हो रही थी। वे एक अपरिचित नगर में इक्केवान के हाथ में पड़े चिन्ता और क्षुधा की परम सत्यता का अनुभव कर रहे थे। उन्होंने शीघ्र ही जोर से कहा—"तो शोर क्यों मचाता है बाबा ! चल छोटा व्यायामशाला चल।"

इक्केवान यह सुनते ही इतने जोर से उछला कि घोड़ा भी डर गया और उछल पड़ा। सातवें स्वर में चिल्लाता और आस-मान सिर पर उठाता हुआ इक्केवान बोला—बाबूजी, खुदा के लिए जबान सम्हालकर बोलिए, नहीं फिर कहे देता हूँ कि ठीक

न होगा। जब आप पढ़े-लिखे होकर लाजवाब बोलते हैं तो मैं तो जाहिल ही ठहरा। कुछ कह दूँगा तो शान में बट्टा लग जायगा। जाइए उतरिये इक्के पर से। मेरी मजदूरी भी गयी, गाली ऊपर से। खैर मैं समझ लूँगा कि मैंने अब तक इक्का जोता ही नहीं था। आप रईस होंगे तो अपने घर के। मैं गरीब हूँ तो आपसे कुछ भीख माँगने थोड़े ही जाता हूँ। अच्छे आये इक्के पर बैठनेवाले !!'

दर्शन के विद्वान डाक्टर बागची बुड्ढे इक्केवान के इस भीषण प्रदर्शन को देख स्तब्ध रह गये। परोक्ष सत्ता की मीमांसा के प्रकाण्ड पण्डित होकर भी वे इस प्रत्यक्ष सत्ता की उलझन सुलझाने में एकदम असमर्थ हो गये। वे समझ ही नहीं सके कि बुड्ढा इतना रुष्ट क्यों हो रहा है! कुछ अफीम-सफीम तो नहीं खाये है। मैंने उसे गाली कहाँ दी। मैंने तो केवल डिप्टी साहब के घर का पता बतलाकर इसे इक्का हाँकने को कहा था।

किन्तु तब तक दर्शन शास्त्र के अधिकारी विद्वान् तथा कानपुर के इस सुप्रसिद्ध बधिर इक्केवान के प्रेमालाप-प्रदर्शन का आनन्द लेने के लिए, उन दोनों का गम्भीर संवाद सुनने के लिए उक्त घटनास्थल पर दर्शकों की, जिन्हें सामान्य भाषा में लोग तमाशबीन कहा करते हैं, अच्छी खासी भीड़ जमा हो गयी थी। उस भीड़ में से किसी ने डाक्टर साहब को समझाते हुए कहा—"क्या बात है बाबूजी। जाने दीजिए। चार पैसे और दे दीजिए! गरीब आदमी है! किसी को दो पैसा अधिक दीजिएगा तो आपका दिवाला थोड़े ही निकल जायगा।' किसी ने इक्केवाले से कहा—क्यों बड़े मियाँ क्या बात है। कितना किराया तय किया था। पहिले ही क्यों न साफ-साफ किराया तय कर लिया। पर जब इक्केवान ने कहा—अमाँ, किराया-सिराया गया जहन्नुम में,

हमें किराया न चाहिए। मगर ये बाबू साहब गाली क्यों दे रहे हैं।

अब क्या था! कई दर्शक लगे कहने—वाह-वाह। जरा सा हैट सर पर रख लिया और चार अक्षर अँगरेजी बूकने लगे तो मानों अपने को लाट साहब ही समझने लगे। गरीब आदमी और बुड्ढा है उस पर लगे रोब गाँठने। तड़ से गाली दे दी।

कोई बोला—ठीक किया। क्यों न गाली दें। ये एक्केवान बड़े ही पाजी होते हैं। सवारी के साथ बड़ा झगड़ा करते हैं। परदेशियों को तो बेहद तंग करते हैं। जनानी सवारी अगर साथ हुई तब तो और भी मुसीबत है। इनके मिजाज ही नहीं मिलते। ऐसों को गाली ही न देना चाहिए बल्कि ठोंकना भी चाहिए।

तब तक एक मुसलमान गुण्डा भी वहाँ आ गया था। वह ये बातें सुनकर बोला—जी हाँ। और ये सवारियाँ और आप लोग बड़े ही शरीफ हैं। आप लोग थोड़े ही इन बेचारों को तंग करते हैं। स्कूल कालेज के कितने ही लड़के उतर कर चल देते हैं और एक पैसा किराया नहीं देते। यह बेचारा गरीब और बुड्ढा है इससे इसने बर्दाश्त कर लिया। नहीं तो अभी परसों की बात है कि एक जण्टलमैन को मेरी जानपहचान के ताँगेवाले बिगड़ैल खाँ ने वह चाबुक जमाये, वह चाबुक जमाये, कि बाबू साहब की सारी जण्टिलमैनी हवा हो गयी।

कहने का तात्पर्य यह कि अब बिना वास्तविक कारण की छानबीन किये ही, इक्केवान और डाक्टर बागची के बदले दर्शक ही आपस में वाग्युद्ध करने लगे। पूँजीवाद, गाँधीवाद, अहिंसा-वाद, मजदूर किसान जमींदार, गरीब, मिलमालिक आदि के कार्यों की आलोचना की गयी। साम्प्रदायिक दंगे की नौबत भी आ पहुँची। तब तक एक कांस्टेबुल आया। उसके बीच-बचाव करने पर असली बात खुली कि डाक्टर साहब ने 'छोटा व्यायामशाला

चल' कहा था और एक्केवाले ने 'चोट्टा बेइमान साला' चल समझा था।

८

पूरे एक महीने से कवि सम्मेलन को सफल बनाने के लिए जोरों का आयोजन हो रहा था! एक स्वागत समिति का संघटन किया गया। ठाकुर ठेंगा सिंह को लोगों ने स्वागताध्यक्ष चुना। कविसम्मेलन की अध्यक्षता के लिए सुप्रसिद्ध कवि श्री मृदङ्गपाणि जी 'कवि भूषण' निर्वाचित हुए। स्वागत मन्त्री थे युगान्तरजी। नोटिस निकाली गई, पोस्टर चपकाये गये। लाउड स्पीकर ले लेकर लोग सड़कों और गलियों में चिल्लाते फिरे। जनता में बड़ा उत्साह था। "कवि सम्मेलन का कवि सम्मेलन और उससे जो रुपया उत-रेगा वह जायगा बङ्गाल पीड़ितों की सहायता के लिए। एक पन्थ दो काज। आम के आम गुठली के दाम। फिर भला जनता ऐसे पुण्य कार्य में क्यों चन्दा न देती? स्वागत समिति की सदस्यता का शुल्क १० रु० था। संरक्षक बनने की फीस १००) रु०। फिर क्या था। खूब संरक्षक और सदस्य बने। युगान्तर जी को घर पर भोजन करने का भी अवकाश नहीं मिलता। इसलिए पूरे एक महीने से वे होटल में ही भोजन कर रहे हैं। पैदल चलने से वृथा समय नष्ट होता है, इसलिए युगान्तर जी पूरे एक महीने से ताँगे पर ही घूम रहे हैं। बेचारे युगान्तर जी अधिक कार्य से दुर्बल न हो जायँ, इस कारण आध सेर अनार का रस भी मोती भस्म के साथ ले रहे हैं। क्या करें सार्वजनिक कार्य्य में यह सब प्रपञ्च करना ही पड़ता है।

कवि सम्मेलन के दो दिन पूर्व से ही कवियों का आगमन

प्रारम्भ हो गया। सबके पूर्व पटना से 'निरंकुश' जी आये। आपके साथ आपकी पत्नी तथा तीन लड़कियाँ भी आयीं। इन्हें एक स्थानीय डाक्टर ने अपने यहाँ ठहराया। फिर तो धड़ाधड़ बदायूँ के 'बेचैन' जी, बहराइच के 'बेकार' जी बनारस के 'बेडौल' जी, मथुरा के 'मसखरा' जी, अलीगढ़ के 'अजनवी' जी, सहारनपुर के 'संकोची' जी, प्रयाग के 'प्रमत्त' जी, गाजीपुर के 'गड़बड़' जी, बलिया के 'बलवन्त' जी, चम्पारन के 'चञ्चल' जी, दरभंगा के 'दर्दनाक' जी, फतेहपुर के 'फितूरी' जी, मिर्जापुर के 'मनमौजी' जी, बरेली के 'बदमाश' जी, तथा हरदोई के 'हज्जाम' जी आदि आने लग गये। पाँच कवयित्रियाँ भी आयीं। वे थीं कमाऊँ की 'कमनीया' जी, हाथरस की 'हासिनी' जी, बिजनौर की 'विकलांगी' जी, मुरादाबाद की 'मोहिनी' जी तथा प्रतापगढ़ की 'पन्नगी' जी। अन्तिम ट्रेन से कलकत्ता के किन्नर जी पधारे और उन्हीं के साथ इटावा की 'अप्सरा' जी भी आयीं जो फिलहाल कलकत्ता में ही रह कर 'नारी' नामक मासिक पत्रिका का सम्पादन करती थीं। चम्पारन के 'चञ्चल' जी अपने साथ अपने तीन शिष्यों को भी ले आये थे। और 'विकलांगी' जी के साथ उनके पतिदेव तथा डेढ़ बरस का एक बच्चा-ये दोनों प्राणी भी थे।

इन सभी कवियों को लेने के लिए स्वेच्छा सेवक लोग स्टेशन गये थे। नगर के अनेक रईसों की मोटरें इन्हें ले आने के लिए दिन और रात भर स्टेशन पर विराजमान रहती थीं। स्वयं युगान्तर जी कई बार स्टेशन गये थे। कुछ कवियों को सेकेण्ड क्लास का किराया भेजा गया था तथा कुछ को इण्टर का। पर एक 'सन्तोषी' जी को छोड़ कर सभी थर्ड क्लास में आये। गाजी-पुर के गड़बड़ जी बिना टिकट ही आये थे। इसलिए उनके कारण रेलवे अधिकारियों के साथ स्वागत समिति का झगड़ा भी हो

गया। किसी प्रकार 'पेनाल्टी' आदि देकर मामला तय किया गया।

कवियों के ठहराने के लिए अपर प्राइमरी स्कूल का हाल नियत किया गया था। प्रायः सभी उसी में ठहराये गये। हाँ 'किन्नर जी' 'अप्सरा' जी के साथ मिनर्वा होटल में ठहरे। ये दोनों आये भी थे सेकेण्ड क्लास में ही, हाँला कि फतेहपुर तक दोनों ने थर्ड क्लास में ही यात्रा की थी। पर फतेहपुर में आकर सेकेण्ड क्लास का टिकट बनवा लिया था। मोहिनी जी अपनी किसी मौसी के यहाँ रह गयीं तथा 'हज्जाम' जी भी अपने बहनोई के यहाँ जो कानपुर में ही आजकल 'सेनीटरी इंस्पेक्टर' के पद को सुशोभित कर रहे थे, ठहरे! प्रयाग के 'प्रमत्त' जी को एक स्थानीय वकील ने अपने यहाँ ठहराया। प्राइमरी स्कूल में केवल पूरी तरकारी या कच्ची रसोई की व्यवस्था देखकर प्रमत्त जी हताश हो रहे थे कि इतने में ही उनका मनोभाव समझकर 'युगान्तर' जी ने उनके लिए वकील साहब के यहाँ प्रबन्ध करा दिया।

प्राइमरी स्कूल के हाल में कवियों ने कुशल प्रश्न पूछने के पश्चात् जो चर्चा छेड़ी उसका आशय यही था कि किसको कितना किराया भेजा गया था और उस किराये में से किसने कितना बचाया। अनजबीजी इस बात पर बिगड़ रहे थे कि युगान्तरजी ने पत्र में उन्हें लिखा था कि १० तारीख को उनके पास इण्टर का किराया और कुली आदि का खर्च कुल मिलाकर तेरह रुपये मनि-आर्डर से भेज दिये गये, पर उस मनिआर्डर का आज अलीगढ़ से रवाना होनेके समय तक कहीं पता नहीं था। वे स्वयं पोस्ट-आफिस दस बारह बार पता लगाने गये थे। एक बार अपने लड़के को भी भेजा था। डाकिया को भी तिखार-तिखार कर सहेज दिया था पर पूरे एक सप्ताह के बीत जाने पर भी उक्त मनीआर्डर का पता नहीं था। युगान्तरजी ने उन्हें यहाँ मनिआर्डर

भेजने की रसीद दिखाने का वादा किया था। पर अजनबीजी ने साफ़ कह दिया—मैं बिना रुपया लिए कविता न पढ़ूँगा। आप अपना मनिआर्डर वापस मँगा लीजिएगा।"

'विकलांगी' जी के पति को संग्रहणी की बीमारी थी, इसलिए उनके लिए केवल बेल का मुरब्बा, सन्तरे का रस तथा मट्ठे का प्रबन्ध किया गया। 'गड़बड़' जी को बिना धारोष्ण दूध पिये कब्ज की शिकायत हो जाती है इसलिए उन्हें सबेरे शाम एक स्वेच्छा सेवक अपने साथ गोशाला लिवा जाने को नियुक्त हुआ। यों तो उन्होंने केवल पाव भर दूध की व्यवस्था के लिए कहा था, पर गोशाला में जाकर पूरे तीन पाव दूध पीने लग गये। 'कमनीया' जी कविसम्मेलन के पहिले ही कानपुर शहर घूमना चाहती थीं, इसलिए युगान्तरजी उन्हें घुमाने लिवा चले। शहर घुमाकर जब वे लौटे तो कमनीयाजी के पास कपड़ों, स्नो, पाउडर आदि के कई पुलिन्दे थे। ये सब सामग्रियाँ युगान्तरजी ने अपनी ओर से उन्हें भेंट में दी थीं, पर जहाँ तक पता चला है सब चन्दे की रक़म में से ही खरीदी गयी थीं।

प्रतापगढ़ की पञ्चगीजी जिस ताँगे पर बैठकर सम्मेलन पण्डाल को चलीं, उसी पर 'दर्दनाक' जी भी जा बैठे। युगान्तरजी स्वयं वहाँ बैठना चाहते थे, इसलिए उन्होंने दर्दनाकजी को किसी बहाने से खिसकाना चाहा! वे बोले—दर्दनाकजी, अभी आपने भोजन नहीं किया है! पहिले भोजन तो कर लीजिए। मैं अभी ताँगा वापस भेजता हूँ।

दर्दनाकजी उतर तो गये, पर कुछ मानसिक कष्ट के साथ। पर जब तक युगान्तरजी उनके स्थान पर विराजें तब तक वहाँ 'चञ्चल' जी जा विराजें।

कविसम्मेलन ठीक ८ बजे रात से प्रारम्भ होने को था, पर

अभी कई कवि सैर करने गये थे। कुछ 'शेव' कर रहे थे, कुछ 'स्नो' का विलेपन कर रहे थे। कुछ भोजन कर रहे थे, कुछ शौच गये हुए थे। 'निरंकुश'जी अपनी दो लड़कियों के साथ सिनेमा का फर्स्ट शो देखने गये थे! निरंकुशजी की पत्नी अपनी सबसे छोटी तीन साल की लड़की को लेकर 'बेचैन' जी के साथ कहीं घूमने गयी थीं।

नौ बज रहा था, पर अभी तक कवियों का झुण्ड पण्डाल में नहीं पहुँच सका था। केवल पन्नगीजी, चञ्चलजी तथा युगान्तरजी पहुँच गये थे। सभापति मृदंगपाणिजी को लिवाकर ठाकुर ठेंगा-सिंहजी ठीक पौने आठ बजे सम्मेलन पण्डाल में पहुँच गये थे। ठाकुर ठेंगासिंह समय के बड़े पाबन्द थे। उन्हीं के यहाँ ठहरने का प्रताप था कि मृदंगपाणिजी खा-पीकर समय से तैयार हो गये थे। ठाकुर साहब युगान्तरजी पर बड़े रुष्ट हो रहे थे। पर युगान्तर जी उन्हें समझा रहे थे—ठाकुर साहब, कवियों का मामला है, आठ का अगर नौ हो गया तो भी गनीमत है। मैंने तो देखा है कि पाँच बजे सन्ध्या को शुरू होनेवाले कविसम्मेलन ६ बजे शुरू हुए हैं। आप घबड़ाइए नहीं, जितनी ही देर में आरम्भ होगा, उतनी ही देर में समाप्त भी तो होगा। सम्मेलन की सफलता इस कसौटीपर कसी जाती है कि वह कै बजे समाप्त हुआ। कहीं-कहीं तो सबेरे चार बजे सम्मेलन समाप्त हुआ है।

पर ठाकुर साहब शान्त होने के बदले इस बात को सुनकर और भी क्रुद्ध हुए। सम्मेलन के नाम पर वे अखण्ड जागरण करने को तैयार नहीं। दस तक वे शयन करने चले जाते थे, आज ग्यारह सही। पर यहाँ तो लक्षण यह दीख रहा था कि दस बजे के पूर्व सम्मेलन का प्रारम्भ होना ही कठिन है। जनता अलग शोरगुल कर रही थी। बारे ६॥ बजते-बजते कविसम्मेलन का

कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। सबके पूर्व ठाकुर ठेंगासिंह अपना स्वागत भाषण पढ़ने के लिए खड़े हुए। उन्होंने कहा—सज्जनों, मैं अपना मुद्रित स्वागत-भाषण इस समय नहीं पढ़ूँगा, कारण विलम्ब अत्यधिक हो गया है। आठ के स्थान पर हम ९॥ बजे कार्य आरम्भ कर रहे हैं। मैं आप सबसे उसके लिए क्षमा याचना करता हूँ। कविगणों से मेरी विनम्र प्रार्थना है कि भविष्य में समय की पाबन्दी पर विशेष ध्यान रक्खा करें।

कवियों के पास जिस प्रकार फालतू समय होता है उस प्रकार सबके पास नहीं। यहाँ कितने ही छोटे बच्चे भी साढ़े सात बजे से ही एकत्र हैं। कितनी ही माताएँ और बहिनें भी आयी हैं। उन सबके अमूल्य समय की कितनी क्षति हुई। आप सबको क्या? आप तो निरंकुश हैं। किन्तु कवि-सज्जनों! ऐसी निरंकुशता न करें कि औरोंको असुविधा हो! मैं जानता हूँ कि आपकी सुन्दर कविताएँ सुनकर हम अपने समय की यह क्षति भूल जायँगे, तब भी समय पर यदि सम्मेलन आरम्भ हुआ होता तो हम लोग दस-पाँच कविताएँ अधिक ही आपसे सुन सकते।"

ठाकुर साहब की स्पष्टोक्ति का बहुत से लोगो ने बुरा माना। कवि लोग तो काफी कुड़बुड़ाये। स्वयं युगान्तरजी को ठाकुर साहब की यह दो टूक बात अच्छी न लगी। पर चारा ही क्या था। कवियों को अभी आधा किराया वसूल करना था। केवल एक-तरफा मार्गव्यय ले लेकर लोग आये थे। ऊपर से कुछ दक्षिणा मिलने का भी तार था। विशेष कुड़बुड़ाने से दक्षिणा की रकम आदि में विघ्न पड़ने की शंका जो थी। सो सभी लोग 'हें हें हें हें' करके रह गये।

कवि सम्मेलन अब प्रारम्भ हुआ। सभापति श्री मृदंगपाणि चौबे अपने उच्च आसन पर उचक्के की भाँति विराजमान हुए।

उन्हें सुन्दर हार पहिनाया गया जिसे उन्होंने तुरन्त उतार कर चौकी पर रख दिया। ठाकुर ठेंगा सिंह को यह बात पसन्द न आयी। ऐसा करनेवालों को वे विशेष शिष्ट नहीं मानते थे। कोई आपको सम्मान और स्नेह से माला पहिनावे और आप उसे तुरन्त उतार कर रख दें यह कहाँ की शिष्टता है ? हाँ यदि फूल बासी या सड़े हैं और उनसे दुर्गन्ध आ रही हो तो उतार देने में कोई तुक भी है। या फूलों पर चींटियाँ चढ़ गयी हैं और आपकी नाक में उनके घुस जाने का डर हो तो भी एक बात है।

ठाकुर साहब ने युगान्तरजी को संकेत किया कि माला को पुनः सभापति के गले में डाल दिया जाय। सो युगान्तरजी ने उस उतारी हुई माला को उन्हें फिर पहना दिया। इस बार पुनः तालियाँ बजीं। मृदंगपाणिजी ने, जो उचक्के की भाँति केवल इधर-उधर ताक रहे थे, यह समझा कि दूसरी माला किसी और व्यक्ति ने पहनायी है, सो इस बार भी उन्होंने माला उतारकर रख दी।

ठाकुर ठेंगा सिंह को बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने अपने बगल में बैठे हुए लाला हिम्मत बहादुर से इस बात की शिकायत की तो लालाजी स्वयं उठे और उस उतारी हुई माला को सभापति के कण्ठ में डालने चले। पुनः तालियों की गड़गड़ाहट हुई। सभापति मृदंगपाणिजी ने समझा कि मालूम पड़ता है नगर की सभी साहित्यिक संस्थाओं के प्रतिनिधि एक के बाद एक करके मुझे माला पहिनावेंगे और मेरा अभिनन्दन करेंगे।

जनता ने अभी तक इस 'मालाकाण्ड' का रहस्य नहीं समझा था। किन्तु अब जब कि तीसरी बार मृदंगपाणिजी माला को उतारने चले तो लाला हिम्मत बहादुर ने जो माला पहिनाकर इसी की प्रतीक्षा में वहीं खड़े थे, उनका हाथ पकड़ लिया और उन्हें माला उतारने से रोका। मृदंगपाणिजी ने अब उनका तात्पर्य

समझ लिया और जनता भी इस रहस्य को जानकर जोरों से तालियाँ पीटने लगी। मृदंगपाणिजी भी 'हें हें' करके हँसते हुए अपनी झेंप मिटाने लगे।

हाँ, तो कवि सम्मेलन अब प्रारम्भ हुआ। युगान्तरजी कवियों का परिचय देते थे। जो कवि कविता पढ़ने आता उसे भी माला पहिनायी जाती। मृदंगपाणिजी की फजीहत के पश्चात् अब किसी कवि ने अपनी 'माला' को गले से उतारने का दुःसाहस नहीं किया

सबसे प्रथम चम्पारन के 'चंचल' जी ने एक गीत पढ़ा जिसका शीर्षक था 'पहिली भेंट'। इस गीत की कुछ पंक्तियाँ ये थीं—

प्रिय-तम ! तुमको अन्धकार में
पटरी पर था चलते देखा !
फिर रिक्शे से टकरा करके
गड्ढे बीच उछलते देखा !

तदनन्तर झोले वाले की
वह दूकान सड़ी सी जो है !
वहीं दाम को लेकर झगड़ा
करते और उबलते देखा !

आज एक ही दिन में तुमको
तीन बार अपनी खिड़की से।
इस पटरी से उस पटरी पर
जाते और टहलते देखा।

'तम' से अब प्रकाश में आओ,
प्रेम रोग में मत फँस जाओ !

इसमें जो भी फँसा उसे बस
सदा हाथ ही मलते देखा।

किसी गाँव की मड़ई वाले।
अब अधुना होस्टल के वासी !
पड़े जो कि पुस्तक के पीछे !
बस उनको ही फलते देखा !!

जनता ने 'वाह वाह' की आवाज लगायी। स्कूल कालेज के कई छात्र कट कर रह गये। कवियों ने भी सिर हिलाये। यदि कोई मौन, निस्तब्ध, निर्लिप्त और निर्विकार बैठा था तो वह थे सभापति महोदय ! वे भारत कला भवन में स्थापित स्कन्द गुप्त कालीन किसी पाषाण मूर्ति की भाँति अविचल निःस्पन्द बैठे थे। कवियों की प्रशंसा करना, वाह वाह करना, जनता से शान्त रहने को कहना आदि वे अपना कार्य नहीं समझते थे। केवल पान की तश्तरी में से निकाल निकाल पान चबाना ही उनका एकमात्र लक्ष्य प्रतीत हो रहा था। हर पचीस मिनट के बाद वे एक बार जँभा अवश्य लेते थे।

अब बलिया के 'बलवन्त' जी की बारी आयी। इन्होंने एक गीत सुनाया जिसमें विधवाओं का करुण चित्र खींचा गया था। इन्होंने इस गीत को इतने करुण स्वर में चीखकर पढ़ा मानो इनके घर में आज ही कोई गमी हो गयी हो या ये मसान घाट से अभी-अभी मुर्दा फूँककर आ रहे हों। श्रोताओं में कई महिलाएँ अपने साथ दुधमुहें बच्चे भी ले आयी थीं। 'बलवन्त' जी के मधुर कण्ठ स्वर को सुनते ही एक साथ डेढ़ दर्जन बच्चे भी समवेदना के स्वर में गला फाड़ कर रोने लगे। श्रोताओं में बड़ी हलचल मची। "पुनर्वार, पुनर्वार" तथा "बस करिये, बस करिये" की आवाजें

एक साथ ही पण्डाल में गूँजने लगीं। पर हमारे स्वनामधन्य सभापति महोदय अब भी बैठे थे निश्चल निस्पन्द और निर्विकल्प! उन्होंने न जनता को रोका न कवि को। कविजी कविता पढ़ते ही गये।

किसी किसी प्रकार शोरगुल कम होने पर बिजनौर की 'बिकलांगी' जी कविता पढ़ने आयीं। अब लोग एकदम शान्त हो गये। 'बिकलांगी' जी ने प्रगतिवादी गीत सुनाया जिसका शीर्षक था "धोबिन के प्रति"। वह कविता इस प्रकार थी :—

धोबिन क्यों साबुन रगड़ रगड़
जाड़ों में कपड़े धोती है।
जब शाल दुशाले ओढ़ ओढ़
यह सारी दुनिया सोती है।

\+ + +

धोबी मदिरालय से आया,
तुझको गाली दी, खिझलाया।
क्यों धोबिन उससे झगड़ झगड़
नाहक तू इतना रोती है।

\+ + +

मत लड़, मत रो, मत चीख अरे!
मत मार पीट या दे गाली!
अपने अधिकारों की ऐसे
क्या की जाती है रखवाली!

\+ + +

जैसे कपड़े करती सफेद
अपना भी भाग्य उजाला कर।
यदि पुनः लाल पीला पति हो,
उसका तुरन्त मुँह काला कर।"

बरेली के 'बद्माश' जी ने 'रोटी' शीर्षक एक कविता पढ़ी। उसकी भी बानगी लीजिए:—

'रोटी'

हम क्यों न खायँ, हम क्यों न खायँ ?
रोटी के बिना पेट किसका
करता न कहाँ है काँय काँय ?
हम क्यों न खायँ, हम क्यों न खायँ ?

\+ + +

ये मिल के मोटे मैनेजर,
भरते रुपयों से अपना घर।
उनको ही सुख पहुँचाने को
हम मिहनत कर कितना कमायँ ?

\+ + +

जब थाखो तो ये धनी लोग
हमहन पै करते हैं प्रहार !
अब कैसे हम चुपचाप रहैं
कैसे न करैं कुछ टायँ टायँ ??

जनता ने यह कविता खूब पसन्द की। कई छात्र रोने लग गये। युगान्तरजी के नेत्रों से भी आँसू बरस रहे थे।

अब कानपुर की 'कमनीया' जी की पुकार हुई। उन्होंने अपना विरह-गान आरम्भ किया—

"अब न मेरे पास आना।

दूर दफ्तर में रहो निज
खूब तुम अखबार छापो।

'प्रेस्' तुम्हें यदि सर्वथा प्रिय !
वहीं पर कर लो ठिकाना।
अब न मेरे पास आना!

बड़े सम्पादक बने हो,
कुछ नहीं सम्बन्ध घर से।
मैं निरन्तर जल रही हूँ।
हे एडीटर! विरह - ज्वर से।
पर तुम्हारा व्रत यही है—
छापना, छपना, छपाना।
अब न मेरे पास आना।

रात भर तारक दलों को
गिन, अमित अब हूँ उनींदी।
कल सबेरे दस बजे के
पूर्व मत मुझको जगाना।
प्रिय न मेरे पास आना।

ब्याह क्या तुमसे हुआ मैं
फँस गयी इस दुर्दशा में।
डेढ़ सौ रुपये दिखाकर
चाहते मुझको लुभाना।
प्रिय न मेरे पास आना।

रात भर अखबार - दफ्तर
है तुम्हारा निलय सुन्दर।
और मैं सम्पादकिन
ताका करूँ यह शून्य अम्बर?

अब न मुँह मुझको दिखाना।
प्रिय न मेरे पास आना।

सबके अन्त में एक क्षीणकाय कवि 'मरकट' जी ने जो किसी प्राइमरी स्कूल के अध्यापक भी थे "ओ रिक्शेवाले !" शीर्षक एक प्रगतिशील कविता पढ़ी जिसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार की थीं—

"ओ !
हे ! हो ! अरे !!
रिक्शे वाले ! हे !

घिस रहा है,
पिस रहा है
बना टट्टू है।
डेढ़ रुपये में पसीना
खून का अपने बनाता
और मालिक को चुका कर दाम
सिर्फ आने सात पाता।
और पाता प्रेयसी से
है उपाधि—महा निखट्टू है !

तीन तीन सवारियाँ मत लाद।
फट न जाये हाय ! तेरी लाद।
तन्दुरुस्ती यों न कर बर्बाद
चार पैसों के लिए नाशाद
बन गया यों चपरगट्टू है।
हे ! हो ! अरे !
रिक्शेवाले हे !

इस कविता पर कालेज के छात्रों ने 'पुनर्वार' की वह आवाज लगायी कि आकाश गूँज उठा और सभापति श्रीमृदंगपाणि भी, जो ऊँघ रहे थे, चौंककर जाग पड़े।

सम्मेलन ले देकर किसी भाँति साढ़े बारह बजे समाप्त हुआ। कुल अड़तालीस कवियों ने अपनी रचनाएँ सुनायीं। अभी सभापति का कविता-पाठ शेष था और बाकी था धन्यवाद-प्रकाशन।

अब श्रोता लोग उठने लग गये थे। युगान्तरजी ने जब कहा कि 'आप लोग अभी बैठे रहें, सभापति महोदय भी अपनी कविता सुनावेंगे और उसके बाद धन्यवाद-प्रकाशन का कार्य होगा तो कुछ लोग बैठ गये। परन्तु जब सभापति ने अपनी कविता पढ़नी प्रारम्भ की तो धीरे-धीरे लोग निगाह बचाकर उठने लगे। मृदंगपाणिजी ने कुल चार घनाक्षरी पढ़े। उनके छन्दों की अंतिम पंक्ति के समाप्त होने के पूर्व ही सारा पण्डाल दर्शकों से खाली हो चुका था। युगान्तरजी धन्यवाद अब किसको देते। केवल कवियों और सभापति मृदंगपाणिजी को धन्यवाद दिया और श्रोताओं को उनकी अनुपस्थिति में ही (इन एवसेंशिया) धन्यवाद देकर उन्होंने सभासमाप्ति की घोषणा की।

स्वागतमन्त्री तथा स्वागत-समिति के सदस्य उससमय अपने घरों में एक नींद सो चुके रहे होंगे। किसी की छाया का भी पण्डाल में पता न था। अर्धरात्रि के ऊपर का समय हो रहा था। कड़ाके का जाड़ा पड़ रहा था। जहाँ कवि लोग ठहराये गये थे वह स्थान पण्डाल से पौने तीन मील की दूरी पर अवस्थित था। सवारियों का कहीं पता नहीं। लोगों ने झखमार कर पद-यात्रा का निश्चय किया। पण्डाल में भी सोया जा सकता था, पर ओढ़ने के लिए कम्बल और लोइयाँ कहाँ से उपलब्ध होतीं।

लोग मन मारे हुए जब एक मील चलकर चौराहे तक आये

तो देखा कि एक चाय की दूकान अभी तक खुली हुई है और वहाँ कालेज के सात आठ छात्र बैठे चाय पी रहे हैं। पास ही दो रिक्शेवाले भी आग ताप रहे थे। रिक्शे सड़क के एक किनारे खड़े थे। कवियों में यह सब देखकर नवजीवन का संचार हुआ। ये छात्र भी कविसम्मेलन से ही अभी-अभी वापस आये थे। उन लोगों ने इन कवियों को पहिचान लिया और चाय-पीने का प्रस्ताव किया। सब तो नहीं, हाँ, दस बारह सुकवियों ने इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर मन ही मन अपने भाग्य की सराहना की! इन्हीं में विकलांगीजी और मरकटजी भी थे। बाकी लोगों ने विलम्ब होने के भय से आगे का रास्ता लेना ही बुद्धि-संगत समझा।

चाय पान के पश्चात् जब छात्रों ने इन कवियों की प्रशंसा की तो 'बदमाश' जी ने प्रसन्न होकर अपना नोटबुक निकाला और वहीं दूकान पर खड़े वे अपनी चार कविताएँ सुना गये! विकलांगीजी से भी लोगों ने सुनाने को कहा पर वे कुछ समझदार निकलीं। वे साफ अस्वीकार कर गयीं। उन्होंने छात्रों से कहा—कल डेरे पर आइये न। जितनी कविताएँ कहियेगा, वहाँ सुनाऊँगी। इस समय कोई रिक्शा नहीं मिल सकता?'

'क्यों नहीं?' छात्रों ने कृतार्थ होते हुए कहा—'ये क्या दो रिक्शे खड़े हैं। अरे ओ रिक्शेवालो। कहाँ हो जी। चलो सवारी बिठाओ।'

रिक्शेवाले आग तापना छोड़कर उठना ही नहीं चाहते थे। यह पुकार सुनकर वे जल-भुन गये। उन्होंने निगाह बचाकर खिसकना चाहा। पर छात्र लोग उन्हें कब छोड़नेवाले थे। गरीबों ने लाख हाथ पैर जोड़े—'हुजूर! इस जाड़े में हड्डियाँ जमकर बर्फ हो रही हैं। हम लोग पचास रुपये देने पर भी जान देने दो

मील नहीं जायँगे।' पर छात्रों ने एक न सुनी।

रिक्शेवालों ने भी आखिर अड़कर कहा—साहब हम तो न जायँगे, चाहे जो भी हो।

इतना सुनते ही छात्रों ने घूँसों, थप्पड़ों और जूतों से रिक्शे-वालों को पीटना प्रारम्भ कर दिया। दो चार थप्पड़ कसकर दिये मर्कटजी ने भी, और चाय की दूकानवाले का तो कहना है कि विकलांगीजी ने भी अपने चप्पल से दो चार प्रहार किये थे।

६

ठाकुर ठेंगासिंह ने जब शिकार का प्रस्ताव किया तो सभी ने उसका समर्थन किया। डाक्टर बागची ने भी बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और बोले—भाई। मैंने तो प्रायः दस बरस से शिकार करना छोड़ रखा है। कभी-कभी मछली अवश्य मार लाता हूँ। हाँ, बारह साल पहले मैं तीतर बटेर और मुर्गाबियों का अच्छा शिकार करता था, पर जब से मैं शाकाहारी हो गया तब से चिड़िया मारना बन्द कर दिया है।

'जब आप शाकाहारी हो गये, तब मछली किसके लिए मारते हैं बागची बाबू'—सेठ भड़भड़ियाजी ने प्रश्न किया।

'अपने लिए, और किसके लिए? भई मछली तो शाक ही है न। हम लोग मछली को जलतरोई बोलता है। हम सब शाका-हारी लोग मछली खाने में कोई हरज नहीं मानता?'

''और अण्डा?' युगान्तरजी ने पूछा।

'हाँ अण्डा भी शाकाहार में ही शामिल है। सारे विश्व के वैज्ञानिक अण्डा-भोजन को शाकाहार के ही अन्तर्गत मानते हैं।'

'यह अच्छी रही। जब मछली और अण्डे उड़ाकर भी लोग

अपने को शाकाहारी ही मानें तब फिर कहना ही क्या है।'—मुंशी दबंगलाल ने हँसते हुए टिप्पणी की।

ठाकुर भुलेटन सिंह अब तक चुप थे। गणित का कोई प्रश्न अपने मस्तिष्क में हल कर रहे थे। अकस्मात् चौंककर बोले—अण्डे में माँस तो 'निगेटिव' रहता है। अण्डे का आकार भी 'शून्य' की भांति होता है। इसलिए उसे माँस न मानने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती।

ठाकुर ठेंगासिंह बोले—भई, इस शास्त्रार्थ से क्या लाभ। प्रश्न तो यह है कि कल सबेरे चार बजे ही शिकार के लिए घर से निकल चलना है। आप लोग नित्य की भाँति यदि सात बजे सोकर उठेंगे, तो शिकार के लिए चल चुके। हमें तो सूर्योदय के पहले ही जंगल की सीमा के भीतर पहुँच जाना है। तभी सारी व्यवस्था की जा सकती है।

'आप कहिए तो हम लोग आज रात में सोयें ही नहीं, जागते ही रहें। घर से तीन बजे तड़के ही निकल चलें।' युगान्तरजी बोले।

'जी हाँ, आप ऐसा अवश्य कर सकते हैं। कवि सम्मेलनों में रात-रात जागने का अभ्यास जो आपको है'—ठाकुर भुलेटन सिंह बोले—'किन्तु हम लोग तो बिना नींद लिए सबेरे हिलने-डोलने लायक न रह जायँगे।'

अस्तु, यही निश्चय हुआ कि लोग रात के आठ तक सो जायँ और सबेरे तीन बजे उठकर तैयारी करने में लगें और चार बजे तक घर के बाहर निकल पड़ें।

\+ \+ \+ \+

ठीक चार बजे तड़के हमारी शिकार-पार्टी जंगल के लिए चल पड़ी। पार्टी के सदस्यों में सर्वश्री ठाकुर ठेंगासिंह, भुलेटन सिंह,

डाक्टर बागची, दबंगलाल, युगान्तरजी, बल्लूसिंह (ठाकुर ठेंगा-सिंह के साले साहब) तो थे ही चार नौकर भी थे जो टोकरियों में खाने-पीने का सामान लिये हुए थे। एक मुख्य चपरासी ने भी बन्दूक ले रखी थी। सदस्यों में सभी के पास बन्दूकें थीं। युगान्तरजी के पास भी बन्दूक की लाइसेंस ठाकुर ठेंगासिंहकी कृपा से थी और उन्होंने एक पुरानी बन्दूक खरीद ली थी। सो हमारे सभी सदस्य एकदम से शिकारी और तगड़े शिकारी प्रतीत होते थे। केवल युगान्तरजी बन्दूक को कभी दाहिने, कभी बाँयें कन्धे पर रखते रहते थे। कुछ देर के लिए उन्होंने बन्दूक को बगल में दबा कर भी चलना प्रारम्भ कर दिया। चपरासी लोग यह देखकर मन ही मन हँसते थे।

साढ़े पाँच बजे तक यह दल जंगल की सीमा पर पहुँच गया। अब यह विचार होने लगा कि दल को दो भागों में बाँट दिया जाय। एक दल के नेता ठाकुर ठेंगासिंह और दूसरे के श्रीबागची बनाये गये। ठाकुर साहब के दल में ही श्रीभुलेटन सिंह और मुंशी दबंगलाल ने रहना पसन्द किया। भड़भड़ियाजी, युगान्तरजी और बल्लूसिंह ने डाक्टर बागची के नेतृत्व में रहना अधिक सम्मान-सूचक समझा! एक-एक नौकर भी दोनों दलों के साथ कर दिया गया। दो नौकर चाय बनाने तथा जलपान की व्यवस्था आदि के लिए जंगल की सीमा पर ही छोड़ दिये गये और दोनों शिकारी-दल जंगल के भीतर दो पृथक् दिशाओं की ओर चल पड़े।

ठाकुर ठेंगासिंह का दल जिस ओर चला उस ओर जंगल कुछ अधिक घना था। थोड़ी ही दूर जाने पर एक विशाल पेड़-बटवृक्ष दिखलायी पड़ा जिसकी एक डाली पृथ्वी पर सीधी लेटी हुई थी और उस डाली पर ही एक और डाली आकर एकदम सीधी खड़ी हो गयी थी। इसे देखते ही ठाकुर भुलेटनसिंह मारे

प्रसन्नता के चिल्ला उठे—वाह-वाह, साफ नब्बे डिग्री का परपेण्डिकुलर है। ईश्वर और प्रकृति भी 'ज्यामेट्री' के कितने भारी पंडित हैं।

ठाकुर ठेंगासिंह ने बिगड़कर कहा—'अरे! चुप भी रहो। इस प्रकार चिल्लाते हुए चलोगे तो जानवर हमारी आहट पाकर चलते बनेंगे या अपना शिकार करवाने के लिए हमारे सम्मुख स्वयं आ जायँगे? तुम्हें हर समय गणित ही सूझता है।'

ठाकुर भुलेटनसिंह तो उस पेड़ को छोड़कर हटना ही नहीं चाहते थे। वे धीरे से बोले—'यार खाली परपेण्डिकुलर ही क्यों? इस पेड़ की डालियाँ तो कई जगह रिक्टेङ्गिल, ट्रेपीजियम और 'रोम्बस' भी बना रही हैं। थोड़ी देर रुक न जाओ, अभी ही यह सब देखकर आगे बढ़ता हूँ।'

ठाकुर ठेंगासिंह ने उन्हें संकेत से—अपने मुँह पर उँगली रखकर चुप होने की आज्ञा दी और उन्हें एक प्रकार से घसीटते हुए आगे की ओर बढ़े। लाचार हो श्रीभुलेटनसिंह भी पेड़ को छोड़कर आगे बढ़े, पर रह-रह कर, घूम-घूमकर उस पेड़ की ओर देख लिया करते थे। इस प्रकार घूम-घूमकर देखते रहने के कारण वे एक ठूँठ से इस प्रकार टकराये कि मुँह के बल धड़ाम से गिरे। आस-पास पेड़ों पर बैठी चिड़ियाँ यह शब्द सुनकर चें-चें करती उड़ गयीं। ठाकुर ठेंगासिंह ने मुड़कर देखा तो प्रोफेसर भुलेटन सिंह को सूर्य-नमस्कार करते पाया। उन्होंने हँसी को रोकते हुए कहा—'यह सूर्य-नमस्कार घर पर कर लीजियेगा। यहाँ जंगल में इसका अवसर नहीं है। इस समय आप ही इस ठूँठ के पास पृथ्वी पर पड़े हुए पैंतालीस डिग्री का कोण बना रहे हैं। शीघ्र उठिये नहीं तो कोई शेर या भालू आकर आपको उठाने का प्रयत्न करेगा।'

शेर या भालू को यह भार सौंपना उचित न समझ ठाकुर भुलेटन सिंह कराहते हुए उठे और किसी प्रकार ठाकुर ठेंगासिंह के कन्धे का सहारा लेते हुए आगे चलने लगे। मुंशी दबंगलाल ने प्रोफेसर साहब के पीछे-पीछे चलना प्रारम्भ किया। अब प्रोफेसर साहब यदि एकबारगी पीछे की ओर मुड़कर ताकते तो मुंशीजी उनका सिर आगे की ओर घुमा दिया करते।

अब प्रायः सबेरा हो चला था। शिकारी जानवर रात भर स्वच्छन्द शिकार करने के अनन्तर अपनी माँदों की ओर लौटने लगे थे। सबसे पहले इन लोगों के सामने से ही एक लोमड़ी भागती हुई निकल गयी। ठाकुर भुलेटनसिंह ने यह देखकर चिल्लाना चाहा तो ठाकुर ठेंगासिंह ने उनका मुँह अपने हाथ से बन्द कर दिया।

ठाकुर साहब पुराने और अनुभवी शिकारी थे। पृथ्वी पर खड़े-खड़े शिकार करने का उनका अच्छा अभ्यास था। निर्भीक आदमी थे। मचान-सचान के फेर में नहीं पड़ते थे। पेड़ पर चढ़ कर या झाड़-झँखाड़ में छिपकर भी वे शिकार करना मर्दानगी के विरुद्ध समझते थे। पर इस समय वे ठाकुर ठेंगासिंह और मुंशी दबंगलाल जैसे साथियों को साथ लाने की गल्ती का अच्छी तरह अनुभव कर रहे थे। ठाकुर भुलेटनसिंह की हरकतें तो पाठकों ने देख ही लीं, किन्तु मुंशी दबंगलाल ?

जी हाँ, मुंशी दबंगलाल भी कोई ऐसे वैसे आदमी न थे। सेठ भड़भड़िया के सेक्रेटरी होने के नाते उन्हें बन्दूक ही क्या पिस्तौल तक का लाइसेंस प्राप्त था। उन्होंने अपनी पिस्तौल से एक दिन एक पागल कुत्ते को मारा भी था और दस मिनट तक वह जमीन पर निर्जीव सा पड़ा भी रहा पर बाद में उठ कर भाग भी गया था। अभी उस दिन एक बिल्ली भी उनके पिस्तौल की गोली से

लगभग मर ही चुकी थी, यह तो कहिए कि उसके ग्रह अच्छे थे जो गोली उसे न लगकर पास की आलमारी में लगी जिसमें रखे हुए दूध के कटोरे को स्वच्छ करके वह लौट रही थी।

सो, यह बात नहीं कि मुंशीजी कोई मामूली शिकारी थे। ग्रहों के अच्छे और अनुकूल होने को वे क्या करें। उनके निशाने जब-जब खाली जाते, तब-तब वे बड़े ही भक्ति-भाव से यह दोहा गुनगुनाते—

जाको राखै साइयाँ, मार न सक्कै कोय।
बाल न बाँका कर सकै, जो जग बैरी होय॥'

और वे अपने निशाने के चूक जाने पर ईश्वर को नमस्कार तो करते ही उस जानवर को भी श्रद्धापूर्वक प्रणाम करते थे।

पर यह सब शिकार का अभ्यास उन्होंने अपने कमरे के भीतर या छत पर ही किया था। जंगल में आने का उनका यह पहला ही अवसर था। वे जंगल में आना नहीं चाहते थे ऐसी बात भी न थी। बात यह थी कि वे जंगल में आना नहीं चाहते थे पर बात यह भी थी कि वे कैसे कह देते कि वे जंगल में आना नहीं चाहते। सो बात ऐसी हुई कि न चाहते हुए भी वे जंगल में आ गये।

लोमड़ी का उन्होंने आज तक चित्र भी न देखा था और उनका विश्वास था कि लोमड़ी भारत में नहीं होती वरञ्च यूरोप के देशों में पायी जाती है। सो जब उन्होंने लोमड़ी को देखा तो यही समझा कि यह कोई चीता या गैंडा है। वे थर-थर काँपने लगे और बन्दूक उनके हाथ से गिर पड़ी।

ठाकुर ठेंगासिंह ने अपना सिर पीटा। उन्हें धीरे से समझाया 'वाह भाई मुंशीजी, लोमड़ी को देखने पर जब आपकी यह दशा,

तो शेर या भालू देखकर न जाने क्या हालत होगी। इसी बिरते पर आप शिकार करने आये थे।' यदि साहस न होता हो तो आप इसी पेड़ पर चढ़ जाइये। हम लोग आगे बढ़ें।

मुंशी दबंगलाल बोले—'क्या हर्ज है। मैं पेड़ पर चढ़कर ही देखूँ कि कोई जानवर वानवर दिखलायी पड़ता है या नहीं। तब तक आप लोग आगे बढ़िये। कोई जानवर दिखलायी पड़ते ही मैं चिल्लाकर आप लोगों को सूचना दूँगा।'

'जी नहीं, धन्यवाद, सूचना देने की कोई आवश्यकता नहीं। और आप कृपा करके चिल्लाइयेगा भी नहीं।—ठाकुर ठेंगा-सिंह ने उन्हें समझाते हुए कहा।

सो, मुंशीजी को नौकर ने सहारा देकर पेड़ पर चढ़ा दिया और वे उस पर बैठकर परमात्मा को अनेकानेक धन्यवाद देने लगे और शेष तीन व्यक्ति आगे बढ़े।

कुछ दूर आगे जाने पर ठाकुर भुलेटनसिंह ने कहा—'यदि मैं भी कुछ देर के लिए किसी पेड़ पर बैठ रहूँ तो किसी को कोई आपत्ति तो नहीं है। कहिए ठाकुर ठेंगासिंहजी, मैं जरा पेड़ पर बैठकर इस जंगल का दृश्य देखना चाहता था। मैं समझता हूँ कि प्रागैतिहासिक युग के मनुष्य पेड़ पर ही रहते थे। तब घर मकान कहाँ थे। घर मकान तो ज्यामेट्री के विकास के पश्चात् ही बने होंगे। आपकी क्या राय है?'

'किस बारे में राय?'—ठाकुर ठेंगासिंह ने पूछा—'इस बारे में कि आप पेड़ पर बैठें या नहीं, अथवा इस बारे में कि ज्यामेट्री के विकास के बाद घर मकान बने? दूसरे प्रश्न पर मैं अपनी राय जरा फुर्सत के समय दूँगा। पहले प्रश्न पर अलबत्ता मेरी राय अभी-अभी ले लीजिए कि मैं आपके पेड़ पर बैठने का हृदय से समर्थन करता हूँ।'

ठाकुर ठेंगा सिंह को दूसरा वाक्य बोलने की आवश्यकता न पड़ी और ठाकुर मुलेटन सिंह उछल कर पेड़ पर चढ़ गये। उनका हैट अवश्य पृथ्वी पर गिर पड़ा। पर हैट और उनकी बन्दूक को नौकर ने उन्हें थमा दिया और वे सिगरेट जलाकर धुँआँ उड़ाने लगे। पेड़ पर बैठे कौओं को उनकी यह अनधिकार चेष्टा अच्छी न मालूम हुई। वे विरोध में "कौन! कौन?" कहते हुए चिल्लाने लगे।

\+ \+ \+

अब पृथ्वी पर अवशिष्ट रह गये इस दल के दो ही व्यक्ति—एक तो ठाकुर ठेंगा सिंह और दूसरा उनका मुख्य अर्दली खदेरू। "पृथ्वी पर अवशिष्ट" से हमारा तात्पर्य है पेड़ों के नीचे जो सारी जमीन दृश्यमान है उस पर। क्योंकि अभी तो ठाकुर मुलेटन सिंह और मुंशी दबंगलाल भी जीवित ही हैं—और पेड़ आसमान में नहीं उगा करते।

खदेरू अर्दली ठाकुर ठेंगा सिंह का बड़ा स्वामिभक्त नौकर है। सबेरे-सबेरे ठाकुर साहब के यहाँ मिलने आनेवालों में से निन्यानबे प्रतिशत को खदेड़ देने के कारण ही उसका ऐसा सुन्दर नामकरण जनता ने किया है। यों उसका शुभनाम है खादूराम। वह मिलने आये हुए रईसों या प्रार्थियों से केवल दो रुपये ही नजराना लेता है। एक अपने लिए एक अपनी बीवी के लिए। डिप्टी साहब यदि घूस नहीं लेते तो क्या वह भी न ले? डिप्टी साहब का वेतन साढ़े चार सौ रुपये मासिक है जब कि उन्हें इतना परिश्रम करना पड़ता है। मुकदमों का निर्णय लिखना पड़ता है। ठीक दस बजे कचहरी जाकर वहाँ चार बजे तक बैठना पड़ता है। कभी-कभी मेलों तमाशों और दंगों के समय उन्हें सारे दिन और सारी रात परिश्रम करना पड़ता है। किन्तु खदेरू केवल मिलने-

वालों को खदेड़-खदेड़ कर ही महीने में घर बैठे साढ़े चार सौ रुपये कमा लेता है। डिप्टी साहब किराये के बँगले में रह रहे हैं जब कि खदेरू ने अपने गाँव वाले मकान को नये सिरे से बनवा-कर दस बीघे जमीन भी खरीद ली है और पक्का कुवाँ भी बनवा लिया है।

खदेरू फिर भी बड़ा स्वामिभक्त नौकर है। उसे डिप्टी साहब से बड़ा प्रेम भी है।

चलते-चलते खदेरू ने देखा कि दूर पर कोई भालू जैसा जान-वर बैठा हुआ है। उसने चट से आगे बढ़कर डिप्टी साहब से कहा—'भागिये सरकार, भागिये। सीधे उत्तर की ओर भागिये। वह देखिये वह, वहाँ क्या एक भालू बैठा है। देख रहे हैं न ?'

'तो भागूँ क्यों रे ?'—ठाकुर ठेंगासिंह ने उसे डाँटते हुए, किन्तु धीरे से कहा—'यहाँ शिकार करने आये हैं या भागने के लिए। तुझे क्या हो गया है ? वे दोनों तो एकदम गोबर ही निकले। तू तो बड़ा बहादुर आदमी था। उस बार तूने कितनी बहादुरी दिखलायी थी शिकार में। इस बार क्या बात है जो भागिये भागिये कर रहा है। सामने शिकार को देखकर क्या उसे छोड़ दिया जाता है ?'

'लेकिन सरकार, उस बार तो आपने ऊँट का शिकार किया था। यह तो भालू है।

भला कोई भालू को मारता है ?'—खदेरू ने दुःख और आश्चर्य की मुद्रा में कहा।

'क्यों ! भालू मारने में क्या हर्ज है ?'—ठाकुर साहब ने पूछा।

'सरकार। भालू तो जाम्बवन्तजी हैं।

जैसे बन्दर सब पवित्र हैं, वैसे ही भालू भी। चीता आप भले ही मार लें, पर सिंह और शेर तो देवीजी की सवारी हैं, उन्हें

भला कौन मारेगा। सो भालू मारने के लिए तो मैं सरकार से नहीं कहूँगा।

'वाह! अच्छी वकालत तूने की। यदि प्रत्येक भालू जाम्बवन्त हो तो प्रत्येक मनुष्य को भी राम-लक्ष्मण ही समझा जाय? क्या कहना है। अरे! तू इतना बड़ा शास्त्री कब से बन गया।'

खदेरू सिटपिटाकर चुप रह गया।

ठाकुर ठेंगासिंह ने भालू को ताककर गोली चलानी ही चाही थी कि पेड़ पर मुंशी दबंगलाल और ठाकुर भुलेटनसिंह एक साथ ही चिल्ला उठे—अरे बाप रे! और भालू यह आवाज सुनते ही एक ओर को भाग निकला।

\+ + + +

ठाकुर ठेंगासिंह को क्रोध तो इतना आया कि बन्दूक की गोली बेकार न जाने देकर उन पेड़ों को ही अपना लक्ष्य बनावें जिन पर से उक्त दोनों महानुभावों ने चिल्लाकर सब गुड़ गोबर कर दिया था, पर उन्होंने कुछ सोचकर ऐसा नहीं किया। बात यह है कि प्रोफेसर भुलेटनसिंह उनके बाल्यबन्धु थे और मुंशी दबंग-लाल उनके बड़े भारी प्रशंसक। सो वे क्रोध को पीकर रह गये और यह जानने के लिए पीछे की ओर लौटे कि उक्त दोनों महानुभावों के चिल्लाने का कारण क्या था। वहाँ आकर उन्होंने देखा कि ठाकुर भुलेटनसिंह पेड़ की एक डाली से उलटे लटके हुए हैं और मुंशी दबंगलाल अपने पेड़ से नीचे उतरना चाहते हुए भी नीचे उतर नहीं पा रहे हैं कारण एक गधा उनके पेड़ के नीचे खड़ा है।

ठाकुर भुलेटनसिंह के उल्टा लटकने का कारण यह था कि वे पेड़ पर जब बैठे-बैठे थक गये तो उसी पर उन्होंने लेटकर विश्राम करना चाहा। संयोग से एक डाली उन्हें लेटने योग्य मिल भी गयी। पर लेटते ही उन्हें नींद भी आ गयी और वे लुढ़क पड़े।

किसी पतली डाली में उनके पैण्ट की पेटी फँस गयी जिससे वे पृथ्वी पर गिरने से तो बच गये पर इस समय न वे सम्पूर्ण रूप में पेड़ पर ही थे, न पृथ्वी पर ही। त्रिशंकु या टिट्टिभ पक्षी की भाँति वे ऊर्ध्व-पाद, अधःशिर होकर बीच में ही अवस्थित हो गये थे। एक प्रकार का शीर्षासन भी इसे आप कह सकते हैं—अंतर इतना ही था कि सिर भी यहाँ किसी वस्तु के सहारे अवलम्बित न था।

यद्यपि ठाकुर ठेंगासिंह ने दोनों की चिल्लाहट एक साथ ही सुनी थी और वास्तव में दोनों ही चिल्लाये भी थे प्रायः एक साथ ही, परन्तु यह मानना पड़ेगा कि ठाकुर भुलेटनसिंह का चिल्लाना कम से कम तिहत्तर सेकेण्ड पहले हुआ था। वे अपने गिरने पर ही चिल्लाये थे इसमें रंचमात्र भी सन्देह नहीं। परन्तु मुंशीजी उनके चिल्लाने पर चिल्लाये थे। ठाकुर भुलेटनसिंह की चिल्लाहट सुनते ही मुंशीजी ने जो चौंककर नीचे की ओर देखा तो उन्हें एक जानवर पेड़ के नीचे दिखलायी पड़ा जिसे उन्होंने साक्षात् शेर समझा। और यह भी समझ लिया कि ठाकुर भुलेटनसिंह भी उसी शेर को देखकर चिल्लाये हैं। सो वे भी यदि सहानुभूति में चिल्ला उठें तो इसमें आश्चर्य करने की क्या बात थी? हाँ, अब अवश्य ही उनका भ्रम दूर हो चुका था और वे समझ चुके थे कि यह जन्तु-विशेष जिसे देखकर ठाकुर भुलेटनसिंह चिल्लाये होंगे शेर नहीं वरञ्च गर्दभराज था। तथापि पेड़ से उतरने की चेष्टा में वे कृतकार्य नहीं हो रहे थे कि कहीं ऐसा न हो कि गर्दभराज उनके चिल्लाने से रुष्ट हो गये हों और उनसे प्रतिशोध लेने के लिए कुछ कर न बैठें।

ठाकुर ठेंगासिंह ने येनकेन प्रकारेण खदेरू की सहायता से उन दोनों महारथियों को नीचे उतारा और बोले—हो चुका

शिकार। आप लोग अजायबघर में रखने योग्य हैं। कैसे आप प्रोफेसरी करते होंगे और कैसे आप सेक्रेटरीपना। आप लोगों के कारण आज मुझे खूब ही झेंपना पड़ा। लोग कहेंगे—शिकार करने गये थे। मुँह बस मुँह लेकर बैरंग लौट आये।' धन्य हैं आप लोग। आप दोनों को बारम्बार नमस्कार।'

ठाकुर भुलेटनसिंह 'हें हें हें हें' और मुंशी दबंगलाल 'अरे रे रे' कहकर रह गये। और कहते ही क्या? खदेरू भी मुस्करा रहा था। भालू बध अपनी आँखों न देखने के कारण वह यों भी प्रसन्न ही था, ठाकुर भुलेटनसिंह को चमगादड़ की भाँति पेड़ में लटका हुआ देखकर उसे और भी प्रसन्नता हुई थी।

'अच्छा जो हुआ सो हुआ, अब चलो वापस लौटा जाय। चाय-वाय पीकर फिर सोचा जायगा कि फिर जंगल में आया जाय या घर लौट चला जाय! अब तो सात बज चुके होंगे? पहले चाय पी लेना ही ठीक है। और हो सके तो आप दोनों को घर वापस भेज देना ही उचित होगा।'—ठाकुर ठेंगासिंह ने नैराश्य की मूर्ति बनते हुए कहा।

'सो कैसे हो सकता है? हम लोग घर क्यों लौट जायँगे? हाँ, चाय पी लेने का प्रस्ताव अवश्य अच्छा है। और यह भी तो देख लिया जाय कि प्रोफेसर बागची के दल का क्या हाल-चाल है? उन लोगों के हाथ कुछ लगा या उधर भी हड़ताल ही है। ऐसा न हो कि पहले ही आकर वे लोग जलपान का अधि-कांश साफ कर चुके हों।'

मुंशी दबंगलाल के इस कथन पर ठाकुर ठेंगासिंह को प्रोफेसर बागची आदि का ध्यान आया। बोले—वाह, मुझे तो उन लोगों का स्मरण ही न रह गया था। शायद ठाकुर भुलेटनसिंह के साथ का प्रभाव हो। बात यह है कि शिकार के सच्चे शौकीन

जब तक शिकार कर नहीं लेते उन्हें अन्य बातों के सोचने का अवकाश ही नहीं रहता। मेरा ध्यान कुछ तो शिकार की चिन्ता में था कुछ आप दोनों महानुभावों के व्यवहार की चिन्ता में। अस्तु, चलिये, जो हुआ वह ठीक ही हुआ।'

जंगल की सीमा पर आने पर इन लोगों ने देखा कि घास के मैदान में चादर बिछाकर दूसरे दल के सदस्य आराम से लेटे हुए हैं। जलपान का अधिकांश समाप्त हो चुका है। युगान्तरजी 'नारी' पत्रिका की सम्पादिका को पत्र लिख रहे हैं और प्रोफेसर बागची 'योगवासिष्ठ' का अंग्रेजी अनुवाद पढ़ने में दत्तचित्त हैं। सेठ भड़भड़ियाजी सो रहे हैं और ठाकुर बल्लूसिंह का पैर एक नौकर बड़े मनोयोग से दबा रहा है।

१०

चपला को जब यह पता चला कि उसकी मास्टरनी सुश्री सरला सक्सेना को मुंशी दबंगलाल प्यार करते हैं तो उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने अब मुंशीजी को तंग करना बन्द कर दिया। उसे यह भी पता चल गया कि मुंशीजी उसकी मास्टरानी से विवाह करना चाहते हैं। तब भला अपनी गुरुआनी के भावी पति को वह किस नाते खिझा सकती थी। उलटे वह उनका अब आदर करने लगी।

मुंशीजी भी अब चपला से सुरक्षित होकर जलपान के मामलों में निश्चिन्त हो गये थे। फलतः उनका समय अब अधिकतर काव्य-रचना में खर्च होने लगा। एक सप्ताह के भीतर-भीतर उन्होंने प्रायः पैंतीस कविताएँ लिख डालीं—प्रतिदिन पाँच कविता के हिसाब से! ऐसी तीव्रता तो अच्छे-अच्छे पुराने लिक्खाड़ भी नहीं दिखला सकते थे।

उन्होंने जो कविताएँ लिखीं, उनमें छन्दःशास्त्र की अनेक अशुद्धियाँ थीं, भाषा भी कहीं-कहीं शिथिल और व्याकरण विरुद्ध हो गयी थी, फिर भी जहाँ तक 'भाव' का सम्बन्ध है, उन रचनाओं में पूर्ण मात्रा में रहता था। भावों में अनूठापन भी था। दो एक रचनाएँ जो युगान्तरजी की कृपा से मुझे देखने को मिलीं हैं मैं यहाँ उद्धृत कर देता हूँ।

एक का शीर्षक है 'तुम और मैं'

तुम सरस अप्सरा नन्दन की
मैं होटल का चपरासी।
तुम शीतलता हो चन्दन की,
मैं सड़ा पराठा बासी!
तुम स्वर्ण लता अलबेली!
मैं फटा पुराना 'डेली'

\+ + +

तुम क्या न मुझे अपनाओगी
प्रेयसि! मन हरनेवाली!
नैहर के धन से, बच्चों से
मेरा घर भरनेवाली!
ओ मिस सरला सक्सेना।
मुझको न विरह-दुख देना!

दूसरी कविता घनाक्षरी छन्दों में थी, जो इस प्रकार है—

जब जब देखता तुम्हारा हूँ बदन मंजु,
मन बन जाता शीघ्र सदन मदन का।

राकेट अनेक नीचे जाकेट के फूटते हैं,
जिक्र कैसा तोप तलवार का या गन का।
काँपता विरह में हूँ शुद्ध श्वान-पुच्छ जैसा,
तुच्छ हूँ, तथापि हूँ न पात्र यों हनन का।
नयनों में नीर भरा पूरा एक सावन का,
तन में भरा है नशा यक्सा नम्बर वन का॥

\+ + + +

मेरी बनने में बीवी तुम्हें एतराज क्या है
तुम बस कह दो कि—मत घबड़ाओ तुम।'
चार कौर खाने मैं अधिक लग जाऊँ अभी
खूब अन्नदान का परम पुण्य पाओ तुम!
किसी न किसी से तो विवाह कर लोगी ही तो
क्यों न मुझसे ही करो मत बहलाओ तुम।
मिस सकसेना। मत बात काट देना तुम
बी० ए० तो हुई हो, अब बी० बी० बन जाओ तुम॥

\+ + + +

कविताएँ मुंशी दबंगलाल लिखते तो थे पर सुश्री सरला सक-सेना को वे किसी प्रकार दिखला नहीं सकते थे।

एक दिन वे अपना कमरा बन्द कर स्वरचित कविताओं का पाठ बड़ी तन्मयता के साथ कर रहे थे कि इतने में ठाकुर ठेंगासिंह उनसे किसी काम से मिलने आये। इसके पूर्व कि वे मुंशी दबंग-लाल को पुकारें उनके कानों में उनकी कविताओं का प्रवेश होने लगा। वे भी तन्मय होकर उन्हें सुनने लगे। लगभग आध घण्टे तक यह कविता-पाठ चलता रहा और पूरे आध घण्टे तक ही ठाकुर साहब बरामदे में टहलते हुए इस एकाकी कवि का एकान्त काव्य-संगीत सुनते रहे।

जब ठाकुर साहब ने दरवाजा थपथपाया तब कहीं जाकर मुंशी दबंगलाल की काव्य-धारा रुकी। उन्होंने चौंककर द्वार खोला और ठाकुर ठेंगासिंह को देखकर लज्जित हो उठे।

'झेंपिये मत। मैंने केवल आध घण्टे तक ही आपकी कविताओं का आनन्द लिया है और उनके प्रतिपाद्य विषय और लक्ष्य में भी मेरा अधूरा ही परिचय हो पाया है। यह प्रेयसी सुश्री सकसेना आपके भड़भड़ियाजी की पुत्री कुमारी चपला की अध्यापिका ही हैं या दूसरी कोई। यदि दूसरी कोई हों तो मैं असमर्थ हूँ। हाँ यदि अध्यापिकाजी ही हुईं तो आप निश्चिन्त हो जाइये, मैं उनका विवाह आपके साथ इस महीने की समाप्ति के पहले ही करा दूँगा।'

'इस महीने की समाप्ति के पहले ही' सो किस प्रकार? अभी तो खरमास है।'—मुंशीजी ने हर्ष और विषाद के साथ कहा।

'तब तो आपके लिए और भी अच्छा है। आपका विवाह तो इसी मास में होना चाहिए।'—ठाकुर साहब हँसते हुए बोले।

मुंशीजी कटकर रह गये। परन्तु ठाकुर साहब यदि चाहें तो सरला उनके लिए दुष्प्राप्य नहीं; इसका उन्हें दृढ़-विश्वास हो गया। वे उनके चरणों पर गिर पड़े और बोले—मेरे पिता को आप नहीं जानते। वे अपनी इच्छा से मेरा विवाह करना चाहेंगे। अपनी पसन्द की बहू ढूँढ़ना चाहेंगे। साथ ही सरला भी स्वाधीन नहीं है। उसके भी एक चाचा हैं। नाम भी उनका बड़ा सुन्दर है श्रीजालिमप्रसाद। वे भला मुझे कब पसन्द करेंगे?'

'अजी व्यर्थ मत खोपड़ी चाटो। विवाह तुम्हारा और सरला का होना है या जालिमप्रसाद का तुम्हारे बाप के साथ!—'ठाकुर ठेंगासिंह ने बिगड़ते हुए कहा—'तुम भी बी० ए० पास होकर और एक इतने बड़े सेठ के प्राइवेट सेक्रेटरी होकर कैसी बातें कर

रहे हो। कोई नाबालिग तो हो नहीं और न सरलाजी ही नाबालिग हैं जो तुम दोनों अपना विवाह स्वेच्छा से न कर सको।'

"जी हाँ आपका कहना यथार्थ है। फिर भी जब दोनों के ही पिता जीवित हैं तो उनकी सम्मति ले लेनी उचित है। आपसे किस प्रकार कहूँ। परन्तु जब आपने इस विवाह का उत्तरदायित्व ले लिया है तो आपको ही—'

'ठीक ठीक! तुम छोड़ दो सब मेरे ऊपर? मैं सरला के और तुम्हारे—दोनों के ही पितृ महोदयों को राजी कर लूँगा। पर यह तो बतलाओ कि सरला की ओर से तुम्हें कोई आशा है? कहीं ऐसा न हो वह स्वयं विरोध करे। तुमने कोई ऐसा लक्षण देखा जिससे समझ सको कि वह भी तुम्हें प्यार करती है या तुम्हारा यह प्यार एकांगी ही है।

मुंशीजी बड़े संकोच में पड़े। यद्यपि ठाकुर ठेंगासिंह उनसे मित्रवत् व्यवहार करते थे, फिर भी वे बुजुर्ग थे। उनसे इस प्रेम-व्यापार के सम्बन्ध में वह क्या कहें क्या न कहें? फिर कैसे लक्षण? वे स्वयं प्यार करते हैं उनके लिए बस इतना ही पर्याप्त है। यद्यपि वे यह भी जानते हैं कि सरला उनसे घृणा नहीं करती, पर उन्हें प्यार भी करती है इसका उनके पास क्या प्रमाण?

ठाकुर ठेंगासिंह को देर हो रही थी। जिस काम के लिए वे आये थे उसे भी उन्होंने बाद के लिए स्थगित कर दिया, फिर भी उन्हें कचहरी जाने की जल्दी थी। उन्होंने खीझते हुए कहा—तुम एकदम गधे हो। अवश्य ही खरमास में तुम्हारा विवाह हो जाना चाहिए। अजी अहमकदास! तुमने कभी इस पर भी गौर किया है कि सरला तुमसे चार आँखें हो जाने पर अपनी निगाह नीची कर लेती है या तुम्हें कोई बाँगड़ू समझकर एकदम घूरने लगती है?'

'हाँ आपने ठीक कहा। कई बार उन्होंने अपनी आँखें नीची कर ली थीं।

'और तुम्हारे साथ बातचीत होने पर पैर के अँगूठे से धरती को खरोचने भी लगती हैं या नहीं।'—ठाकुर साहब ने पूछा।

'ठीक याद पड़ा। एक बार तो इतना खरोंचा कि वहाँ पर फर्श के सिमेण्ट का पलस्तर ही छूट गया।' मुंशी दबंगलाल ने शीघ्रता से एक ही साँस में कह डाला।

'बस बस। हो गया रोग का निदान। अवश्य ही तुम्हें प्यार करती हैं। विवाह होकर रहेगा।'

११

युगान्तरजी आज रात में फिर बड़ी देर से लौटे। समझ रहे थे कि पत्नीजी सो गयी होंगी, पर वे जागती हुई दिखलायी पड़ीं। केवल जागती ही नहीं, स्वेटर बुन रही थीं।

युगान्तरजी आते ही बोले—अरे! तुम अब तक जाग रही हो। व्यर्थ स्वास्थ्य चौपट कर रही हो। और रात में सीने-पिरोने से आँखें कमजोर हो जायँगी। इस बारे में मैं तुमसे लाख बार कह चुका हूँ। पर तुम मानती ही नहीं हो।

भला आपको मेरी आँखों का इतना ध्यान तो है। मैं तो समझती थी कि अब श्रीमान् को श्रीमती विकलांगीजी की आँखों की चिन्ता होगी!' पत्नी ने व्यंग्य करते हुए कहा।

'तुम तो हर समय लड़ने को ही तैयार रहती हो। भला मुझसे विकलांगीजी की आँखों से क्या मतलब? अच्छी रहें या फूट जायँ, मेरे लिए सब बराबर है।'

'हूँ हूँ। घबड़ाओ नहीं, ईश्वर ने चाहा तो विकलांगीजी की

आँखें फूट कर ही रहेंगी और साथ ही तुम्हारी भी ! तुम मुझसे नकली प्रेम का नाटक रचते हो और उधर इकलांगी विकलांगी के लिए हाय हाय करते रहते हो ।'—पत्नीजीने रोते हुए कहा ।

'अब तुमसे कौन सिर खपावे ? तुम तो तिल का ताड़, और राई का पर्वत बना देती हो । अरे भाई, सार्वजनिक व्यक्तियों को सभी प्रकार के स्त्री-पुरुषों के सम्पर्क में आना पड़ता है । पर इसका यह अर्थ नहीं कि सबमें अवैध प्रेम-व्यापार ही चलने लगता है । आजकल तो हमारी सरकार भी अन्य देशों के साथ सांस्कृतिक सम्पर्क बढ़ाने पर जोर दे रही है । नाच-गान द्वारा ही यह सम्पर्क अच्छी तरह बढ़ाया जा सकता है ।' युगान्तरजी बोले ।

'क्या बात है । कैसी मौलिक सूझ है । नाच-गान से सम्पर्क बढ़ेगा । अब संस्कृति का अर्थ केवल नाचना गाना रह गया है । अच्छी बात है । तुम गाते तो हो ही, अब नाचना भी आरम्भ कर दो ।' पत्नी ने कड़वी मुस्कान के साथ कहा ।

'नहीं मैं यह कब कहता हूँ कि नाचना-गाना मात्र ही संस्कृति का लक्षण है । और बातें भी हैं । पर उनमें संगीत और नृत्य का विशेष महत्व है ।'

'होगा । पर मुझे तो यह ताना - रीरी तनिक नहीं सुहाता । अभी परसों रात को पड़ोस की मोहिनी अकस्मात् 'आ आ आ आ, करने लगी तो मैंने समझा कि उसे हैजा हो गया । खैर आज दोपहर में विकलांगीजी का एक पत्र तुम्हारे नाम आया है जिसमें उस चुड़ैल ने तुम्हारे स्वास्थ्य का समाचार पूछा है । भला उस चुड़ैल की नानी, उस भुतनी की बच्ची को तुम्हारे स्वास्थ्य से मतलब ?' इस बार पत्नीजी ने दाँत पीसते हुए पूछा ।

युगान्तरजी बड़े घबड़ाये । विकलांगी को इतना मना कर दिया था कि घर के पते से पत्र न लिखा करे, फिर घर के पते से

ही क्यों पत्र भेज दिया। नहीं, ऐसी गलती वह नहीं कर सकती। अवश्य डाकिये की शरारत है। दफ्तर के पते से आये हुए पत्र भी वह कई बार घर पर दे गया है। इस बार भी यह उसी चाण्डाल डाकिये की करनी मालूम पड़ती है।

युगान्तरजी को चिन्ता-निमग्न देखकर धर्मपत्नीजी बोलीं—क्यों, अब बोलते क्यों नहीं? उत्तर नहीं सूझ रहा है। कोई जवाब गढ़ लो।'

'जब तुम्हारा यही विचार है कि मैं जवाब गढ़ा करता हूँ, तब तुमसे कुछ कहना सुनना ही व्यर्थ है।' युगान्तरजी ने निराश होकर कहा।

बिना भोजन किये ही युगान्तरजी चारपाई पर पड़ रहे। धर्म-पत्नी ने भी उनसे भोजन के लिए आग्रह नहीं किया।

सबेरा होने के एक घण्टा पूर्व ही युगान्तरजी घर के बाहर निकले। इस बार उन्होंने आत्महत्या का पूर्ण निश्चय कर लिया था। वे सीधे नदी के किनारे की ओर चल पड़े।

रात में भोजन से वंचित रह जाने के कारण युगान्तरजी के पैर डगमगा रहे थे। पेट में हवा घूम रही थी और गों-गों की ध्वनि मची हुई थी। उन्होंने सोचा—आत्महत्या तो करनी ही है। पहले कुछ खा-पी तो लूँ। बिना कुछ खाये तो नदी के किनारे तक पहुँचना असम्भव है। उन्होंने चारों ओर दृष्टि दौड़ायी। सबेरा हो चला था, पर अभी तक कोई दूकान खुली हुई न दिखायी पड़ी।

किसी प्रकार दो कदम और चले। परन्तु पैरों ने असहयोग करना आरम्भ किया। संयोग अच्छा था। एक खुमचेवाले का दर्शन हुआ। कुछ बासी पकौड़ियाँ और तेल की जलेबियाँ उसके पास बची हुई थीं। युगान्तरजी को ऐसा लगा मानो वह खुमचेवाला न हो साक्षात् धन्वन्तरिजी अमृत-कलश

लेकर समुद्र के भीतर से प्रकट हो गये हों। युगान्तरजी ने खुमचे-वाले का सारा सामान सत्रह मिनट के अन्दर समाप्त कर दिया। दाम देते समय देखा तो पैसे कुछ कम निकले। खुमचेवाले ने जिद्द की 'पूरा पैसा देकर तब आगे बढ़िये।' युगान्तरजी ने कहा—'अबे खुमचेवाले के बच्चे। सड़ी-गली पकौड़ियाँ बेचता फिरता है। कल तेरा चालान न करवा दूँ तो कहना।'

खुमचेवाले ने कहा—करवा देना चालान। अभी तो पैसा चुकता कर दो लालाजी।' पर पैसे पास हों तब न। सवा सात पैसे थे वह सब तो दे ही दिया, आगे और कहाँ से लावें।

खुमचेवाला किसी प्रकार उनकी टोपी और रूमाल लेकर उन्हें मुक्ति देने के लिए तैयार हो सका। युगान्तरजी को मुक्ति मिल गयी और वे आगे बढ़े।

नदी के निकट पहुँच चुके थे और आत्महत्या का निश्चय प्रबल होता जा रहा था कि इतने में ध्यान आया—अरे 'नारी'—पत्रिका की सम्पादिका को अपना लेख तो भेज दिया है, परन्तु चित्र भेजा ही नहीं। वचन दे चुका हूँ कि चित्र अवश्य भेजूँगा। कल पटरी पर बैठनेवाले एक फोटोग्राफर से चित्र खिंचवा चुका हूँ। उसका क्या होगा। और विकलांगीजी को भी एक अन्तिम पत्र तो भेज दूँ। पता नहीं कल उसका जो पत्र आया है और जिसके कारण पत्नीजी का मिजाज इस प्रकार सनका है, उसमें उसने क्या-क्या लिखा है। खैर, अब वह पत्र तो हाथ लगने का नहीं। फिर भी अपनी ओर से विकलांगीजी को पत्र भेजे बिना आत्महत्या जैसा महत्वपूर्ण कदम उठाना कितना असंगत होगा।

युगान्तरजी वहीं सड़क के किनारे बिजली की रोशनी में बैठकर विकलांगीजी को पत्र लिखने लगे। युगान्तरजी पोस्टकार्ड और लिफाफे जेब में सर्वदा रखा करते थे। उन्होंने विकलांगीजी

को एक बड़ा ही दर्दनाक पत्र लिखा। पत्नियों के अत्याचार का मार्मिक वर्णन करते हुए लिखा—अभी तक भारत सभ्य नहीं हो सका। पुरुष पराई पत्नियों या कुमारियों से हिलमिल नहीं सकते—सम्पर्क स्थापित नहीं कर सकते। धर्मपत्नियों ने पतियों को अपना क्रीतदास समझ लिया है। उसपर से तुर्रा यह कि विदेशों में प्रचार कराया जाता है कि भारत में स्त्रियों की दशा ही ठीक नहीं है। मैं कहता हूँ स्त्रियाँ तो चैन की वंशी बजा रही हैं। पुरुषों का पतन है, पुरुषों का। पुरुष असहाय हो रहे हैं। पत्नियों के भय से उन्हें रात में ९ बजे के पहले घर लौट आना पड़ता है। इस प्रतिबन्ध को तोड़ना ही पड़ेगा। मैं तो अब चल रहा हूँ। आगे की पीढ़ी को मेरी आत्महत्या का बदला चुकाना होगा।

'नारी' पत्रिका की सम्पादिका को भी एक पत्र लिखकर लिफाफे में रखा और उसी में अपना चित्र भी। चित्र पर अपना हस्ताक्षर भी किया और लिखा "अन्तिम विदा"।

यह सब कृत्य सम्पादित कर युगान्तरजी ने सोचा—जरा चाय मिलती तो अच्छा था। एक सरदारजी की चाय की दूकान पास ही थी जो खुल चुकी थी। चाय का पानी खौल रहा था। सरदार जी से युगान्तर जी परिचित थे। सरदारजी भी युगान्तरजी का आदर करते थे। युगान्तरजी दूकान के भीतर प्रविष्ट हो गये। सरदारजी बोले—आगाजी। बड़े सवेरे आये। पीओ जी।

युगान्तरजी कुर्सी पर बैठ गये। सरदारजी की दूकान और उनकी चाय की प्रशंसा में एक सारगर्भ भाषण दे डाला—"और सब दूकानदार गधे हैं। चाय बनाना उनके बाप भी नहीं जानते। सरदारजी इस व्यवसाय के सरदार हैं। इस बार जो भी किताब मेरी छपेगी उसमें सरदारजी का सचित्र परिचय दूँगा। कानपुर के चाय-चूड़ामणि; छोला-क्षितिपति; चाट-चक्रवर्ती; बिस्कुट-बाद-

शाह आदि उपाधियों के एकमात्र अधिकारी सरदारजी समोसा-सम्राट् हैं।"

कहने की आवश्यकता नहीं कि बिना बोहनी-बट्टा हुए भी सरदारजी ने अपना नियम भंग कर सबेरे-सबेरे युगान्तरजी को चाय के तीन प्याले तो पिलाये ही, बासी समोसे भी आधे दर्जन से ऊपर ही अर्पित किये। युगान्तरजी का पेट इस समय गद्गद् हो रहा था।

पूर्ण मात्रा में जलपान कर जब युगान्तरजी दूकान के बाहर निकले और सरदारजी की मूर्खता पर एक कोने में जाकर भरपेट हँसकर अपने पेट का कुछ भार कम कर लिया तो नदी की ओर पुनः बढ़े। देखा स्नानार्थी लोग घाट किनारे पहुँच चुके हैं। ये भी एक एकान्त स्थान पर जाकर एक चौकी पर बैठ रहे। युगान्तरजी ने चौकी पर बैठकर एक जेब में से शीशा निकाला और दूसरे में से कंघी निकालकर अपने बाल सँवारने लगे। बाल सँवार कर कंघी-शीशा तो चौकी पर रख दिया और विकलांगीजी को लिखे हुए पत्र को पुनः तन्मय होकर पढ़ने लगे।

"कहो जी खाली हो? दाढ़ी बना दोगे? बाल भी छँटवाने हैं"—कहते हुए एक परदेशी सज्जन ने जब आवाज दी तो युगान्तरजी ने चौंककर पत्र पढ़ना बन्द किया और आगत व्यक्ति की ओर देखने लगे।

१२

'चाँदनी' कानपुर की प्रमुख साहित्यिक संस्था है। इसकी एक विशेषता है कि चाँदनी रात में ही इसके अधिवेशन होते हैं। दूसरी विशेषता यह है कि जमीन पर दरी नहीं बिछायी जाती, केवल चाँदनी बिछाकर ही सदस्य लोग बैठते हैं।

इस संस्था का एक पुस्तकालय भी है जिसमें मुहल्ले के निठल्ले निखट्टू लोग सन्ध्या समय से ही आकर चाँदनी निकलने तक अखबार पढ़ते हैं। पुस्तकों की संख्या भी दो हजार के ऊपर है। हाँ इनमें तीन सवा तीन सौ केवल सूचीपत्र ही हैं।

इस संस्था के अन्दर बाहर से आये हुए व्यक्तियों का स्वागत-अभिनन्दन प्रायः प्रतिदिन ही हुआ करता है। कारण कानपुर ऐसे बड़े नगर में प्रतिदिन ही कोई न कोई साहित्यिक या राजनीतिक नेता या उनका पिछलग्गू आता ही रहता है। स्वदेश के ही नहीं विदेश के लोग भी आते रहते हैं।

क्या मजाल कि कोई बिना अपना स्वागत कराये नगर की सीमा से बाहर पैर रख सके। रूसी, अमेरिकन, जर्मन, अंग्रेज, अरबी, अफगान सभी राजदूतों और यात्रियों का यहाँ स्वागत हो चुका है। जो विदेशी कानपुर नगर में न उतर सके उनका स्वागत स्टेशन पर जाकर रेलगाड़ी में ही इस संस्था के उत्साही सदस्यों ने कर डाला है।

नगर में हाकी के खिलाड़ी यदि बाहर से आये तो 'चाँदनी' ने उनका स्वागत किया। अहमदाबाद से सुर्ती के प्रमुख व्यापारी सेठ छंगामल आये, चाँदनी ने उनको भी अभिनन्दन पत्र अर्पित किया। फिर यह कैसे सम्भव था कि प्रोफेसर बागची बेदाग बच निकलते। उन्हें भी चाँदनी की लपेट में आना ही पड़ा।

प्रोफेसर बागची को सबने फाँस ही लिया। स्वागत करवाने को उन्हें भी बाध्य होना पड़ा। भारतीय तथा पश्चिमीय दर्शन की तुलना पर भाषण करना पड़ा सो घलुए में।

प्रोफेसर बागची के इस स्वागत-समारोह के अध्यक्ष बनाये गये थे ठाकुर भुलेटन सिंह। उन्होंने अध्यक्ष-पद से जो भाषण दिया उसका सारांश कुछ इस प्रकार का था—

प्रोफेसर बागची और मित्रो ! आज हमारा परम सौभाग्य है कि हमारे बीच कलकत्ता के प्रसिद्ध दार्शनिक डाक्टर बागची उपस्थित हैं। यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि आप दर्शन-शास्त्र के अद्वितीय विद्वान् हैं। आपकी पुस्तकें इङ्गलैंड और अमेरिका तक से छप चुकी हैं। अभी आपकी एक पुस्तक का अनुवाद रूसी भाषा में होने जा रहा है और नार्वे वाले भी आपसे लिखा-पढ़ी कर रहे हैं। यही खेद की बात है कि आप गणित नहीं जानते। यदि आपने थोड़ा गणित का भी अध्ययन कर लिया होता तो क्या बात थी। सज्जनो ! बिना गणित का ज्ञान हुए जीवन निःसार है। जैसे बिना दुम का लंगूर, वैसे ही बिना गणित का आदमी। खैर गान्धीजी भी गणित नहीं जानते थे। प्रेमचन्द भी गणित में कच्चे थे। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की भी यही दशा थी। क्या कहा जाय। यह सब प्रकृति के खेल हैं कि मनुष्य को इतना महान् बनाकर भी उसमें एकाध दोष छोड़ ही देती है। हाँ, तो अब मैं डाक्टर बागची से अनुरोध करता हूँ कि वे अपना भाषण आरम्भ करें।

डाक्टर बागची जब भी भाषण देते थे तो लिखित भाषण ही। वह पहले से ही भाषण लिख लेते थे या उसे 'टाइप' करा लेते थे। बहुत से व्याख्यानदाता जो बिना लिखे ही भाषण देना प्रारम्भ कर देते हैं वे बहुत कुछ अनाप-शनाप और अप्रासंगिक भी कह जाते हैं। इसलिए भाषण को पहले से लिखकर रखना ठीक होता है। इसी चाँदनी की एक बैठक में अंग्रेजी के प्रोफेसर डाक्टर फेकन ने 'टामस हार्डी' पर व्याख्यान आरम्भ कर 'पशु-चिकित्सा में परिवर्तन' विषय पर डेढ़ घण्टे तक भाषण किया था। डाक्टर बागची ऐसे असावधान व्यक्ति न थे।

डाक्टर बागची ने बोलना प्रारम्भ किया—शोजन वृन्द ! होम

आपका बोड़ा आभारी है। जे हामको इहाँ बोलाया और हामरा इत्ता श्वागत शोत्कार किया। अब होम आपना लीखीत भाषण पोढ़ेगा।

इसके पश्चात् डाक्टर बागची ने अपना लिखित भाषण पढ़ना प्रारम्भ किया है। इस लिखित भाषण के कुल बारह पृष्ठ थे। कुछ अंश स्याही से, कुछ पेंसिल से लिखे थे। कागज भी कई रंग के थे। एक बादामी था तो दूसरा हरा। एक चिकना गुलाबी भी था। पाँच छः सफेद फुलस्केप आकार के थे तो तीन-चार लेटर पेपर के आकार के।

प्रोफेसर बागची का वह लिखित भाषण कानपुर की 'चाँदनी' के कार्यालय में अब तक सुरक्षित है। उसका कुछ अंश यहाँ दे देना अनुचित न होगा।

"भारतीय दर्शन अद्भुत दर्शन है। एकदम अद्भुत। जीव ब्रह्म, आत्मा-परमात्मा का जैसा विवेचन यहाँ हमारे देश में हुआ है वैसा विश्व के किसी भी देश में नहीं। यहाँ क्या नहीं है। यहाँ सभी वाद हैं–अद्वैतवाद, द्वैतवाद, अद्वैताद्वैतवाद, विशिष्टा-द्वैतवाद, अशिष्टाद्वैतवाद, अवशिष्टाद्वैतवाद, ब्रह्मवाद, परब्रह्मवाद, महाब्रह्मवाद, योगवाद, नियोगवाद, प्रयोगवाद, संयोगवाद, भोग-वाद, उपभोगवाद, मायावाद, कायावाद, छायावाद, जायावाद, गतिवाद, प्रगतिवाद, निरतिवाद, विरतिवाद, सुरतिवाद आदि बहुत से वाद हैं जिनमें से कुछ का ही ठीक विवेचन अभी तक हो सका है। कुछ वाद दर्शन के क्षेत्र से पृथक् होकर साहित्य के क्षेत्र में चले आये हैं जैसे अशिष्टाद्वैतवाद, छायावाद, जायावाद, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद।

कुछ वाद अब मिलते ही नहीं। राहुल सांकृत्यायन और महा-महोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने अपने ग्रन्थों में ऐसे लुप्त हो गये

हुए वादों का उल्लेख किया है—दृष्टान्त के लिए—अनन्तवाद, दन्तवाद, पन्तवाद, हन्तवाद, महन्तवाद, सामन्तवाद, अर्हन्तवाद, भदन्तवाद, सन्तवाद, वसन्तवाद, उदन्तवाद, जघन्यवाद, अनन्य-वाद, अन्यवाद, धन्यवाद।''

पश्चिमीय दर्शन में तो वादों की और भी भरमार है, पर उनका ठीक-ठीक पालन नहीं होता। वहाँ के वादों का क्या कहना। वहाँ इतने 'इज्म' हैं कि कोई उन्हें गिन भी नहीं सकता। पर उनमें सबमें बड़ा गड़बड़ है। वे सब एक प्रकार से 'भूतवाद' के ही रूप हैं। सबमें ही अर्थ और काम का गीत गाया गया है।

अमेरिका के भीतर अब भी जो काले गोरे का भेद किया जाता है वह ठीक नहीं। हिरोशिमा पर किया गया अत्याचार कोई भी सभ्य जाति सहन नहीं कर सकती। राष्ट्रसंघ को चाहिए कि नासिर की सहायता करे। नासिर बेशक वीर आदमी है। रिक्शे पर तीन-तीन सवारियाँ बिठाना मनुष्यता के विरुद्ध है। २७ दिसम्बर को हावड़ा इन्स्टीट्यूट में भाषण करना है।

तुम्हारे पत्र से यह नहीं स्पष्ट हुआ कि तुम कब तक कलकत्ता वापस आओगे। पर्सेण्टेज फाल हो सकता है।……'बागची बाबू स्वयं चौंक पड़े। हैं यह क्या! यह कैसा कागज भाषणवाले कागजों में आ गया। यह तो मेरी डायरी और लेटरपैड में रखा था। अरे राम राम। श्रोता लोग क्या कहते होंगे।''

श्रोता लोग कहते क्या। मुस्करा रहे थे चुपचाप। सचमुच ही बागची बाबू दार्शनिक थे, तभी तो भाषण की प्रति के साथ दूसरे घरेलू कागज-पत्तर भी उठा लाये थे। यही कुशल हुआ कि धोबी का हिसाब या पत्नी की चिट्ठी नहीं उठा लाये।

ठाकुर भुलेटनसिंह ने मोटर में बागची बाबू से यही कहा—यह आपके गणित न जानने का फल है।

गणित जानते होते तो पन्ने गिनकर और पढ़कर ले आते।'

१२

ठाकुर ठेंगासिंह ने जब मुंशी दबंगलाल के विवाह का भार उठा लिया तब वे पीछे हटनेवाले व्यक्ति न थे। वे दबंगलाल के पिता से मिलने उनके गाँव पर गये। दबंगलाल के पिता ने जब सुना कि डिप्टी साहब आये हैं तो दौड़े-दौड़े आये और बोले—हुजूर की बड़ी किरपा हुई। हुजूर ने स्वयं मुझे क्यों न बुलवा लिया। मैं सिर के बल दौड़ता चला आता। खैर जब हुजूर स्वयं ही तशरीफ लाये तब मेरा घर भी तो पवित्र हो गया? कहिये क्या आज्ञा है। अरे खरपतुआ, जा घर में कह दे कुछ हलुआ सलुआ बना दें।'

ठाकुर ठेंगासिंह नौकर द्वारा लायी हुई कुर्सी पर बैठ गये। कुर्सी का बेंत समाप्त हो चुका था इसलिए उस पर एक पीढ़ा रखकर उससे कुर्सी का काम लिया जाता था। डिप्टी साहब को आया हुआ सुनकर गाँव के और दस-पाँच आदमी आ गये और उन्हें नमस्कार कर तथा घेरकर खड़े हो गये।

'तो हुजूर! आज्ञा करें कि इस नाचीज के दरवाजे को किस लिए पवित्र किया?'—दबंगलाल के पिता ने पूछा।

'सो तो बतलाऊँगा ही। बिना मतलब तो कोई किसी के यहाँ जाता नहीं मुंशीजी—'ठाकुर ठेंगासिंह ने कहना प्रारम्भ किया। 'बड़ा जरूरी काम था। मैंने सोचा आपको अपने यहाँ न बुलवा कर आपके ही यहाँ चलना ठीक होगा।

'बताइये बताइये हुजूर। मेरे लायक कोई काम हो और मैं हुजूर के लिए न करूँ यह असम्भव है।'

'बात यह है कि मैं आपके लड़के दबंगलालजी का विवाह ...।'

'तो डिप्टी साहब, लड़की आपकी ही है ?' 'दबंग के पिता ने बात काटकर पूछा।

'नहीं, हाँ, मेरी ही समझिए। मेरे मित्र या परिचित की है तो मेरी ही मान सकते हैं। यह बताइये कि आप शादी करेंगे तो। लड़की मेरी देखी-भाली है। सुन्दर है और 'मैं तो ठाकुर हूँ, कायस्थ नहीं। सो.........

'लेकिन ठाकुर साहब ! मुझे कुछ सोचना पड़ेगा'—मुंशी दबंगलाल के पिता बोले—'बात यह है कि लड़की के बाप या भाई तो कोई आये नहीं। कैसी शादी करेंगे। लेन-देन रहेगा ? यह सब तो कुछ आप अपनी ओर से तय करेंगे नहीं ?'

आपको जो कुछ कहना हो, सीधे मुझसे ही कहिए। बात यह है लड़की का बाप तो है नहीं। एक चाचा हैं जो दलाली करते हैं और प्रायः घर के बाहर ही रहते हैं। लड़की मेरे मित्र सेठ भड़भड़िया की कन्या चपला की अध्यापिका है। लड़की बी० ए० पास और शील-स्वभाव में एकदम अपने नाम के अनुसार ही सरला है।'

'लेकिन डिप्टी साहब, हमें बी० ए० पास लड़की से क्या मतलब ? हमें तो ऐसी लड़की चाहिए जो दबंग की माँ का पैर दबा सके। दोनों जून रसोई बना सके, गाय-बैल को चारा-पानी दे सके। वक्त पर बर्तन भी मल सके।' लड़का तो बी० ए० पास होकर नालायक निकल ही गया। शहरी हो गया है शहरी। गाँव की खोज खबर ही नहीं लेता। माँ-बाप मर गये या जीवित हैं उससे कोई सरोकार ही नहीं। कम से कम पतोहू तो ऐसी आवे जो घर-गृहस्थी सम्हाल सके।' बूढ़े मुंशीजी ने धोती के छोर से चश्मा साफ करते हुए कहा।

'लेकिन मुंशीजी, पतोहू कोई मजदूरिन तो नहीं जो केवल रोटी पकाने और बर्तन मलने के काम में ही लगा दी जाय। अरे साहब, युग बदल रहा है। स्त्रियों को भी हृदय होता है। पढ़ी बेपढ़ी सभी नारियाँ जाग उठी हैं। अब आप उन्हें केवल दासी बनाकर नहीं रख सकते।'

'होगा ठाकुर साहब, हम लोग तो अभी नहीं बदले हैं और न बदलेंगे। आपको आपकी नयी रोशनी मुबारक। हम तो दबंग का ब्याह अपने ही मन से करेंगे; किसी को पञ्च बनाने हम नहीं जाते।'—मुंशीजी ने थोड़ी बेरुखी के साथ उत्तर दिया।

'ठीक है, लेकिन आपको यह भी तो सोचना चाहिए कि जिस लड़के का ब्याह होने जा रहा है उसकी क्या भावनाएँ हैं। वह कैसी लड़की पसन्द करता है। निभना-निभाना तो सारे जीवन उसको है आप लोग तो पके आम ठहरे, आज नहीं कल चू पड़ेंगे। फिर लड़का कोई दूध पीता बच्चा नहीं है, अपना हानि-लाभ समझता है। स्वयं एक सेठ का जो बड़े भारी व्यक्ति हैं, सेक्रेटरी है। औरों को उचित सलाह दे सकता है और देता भी है। क्या वह बिना सोचे-समझे किसी के कहने से अपने जीवन का बलिदान कर सकता है'—ठाकुर साहब ने भी कुछ आवेश में कहा।

'खैर, वह अपने मन से जो चाहे कर सकता है, मैं उसे रोकने नहीं जाता। पर यदि वह अपने कुटुम्ब परिवारवालों की सहानुभूति और सहयोग चाहे तो उसे हमारी बात मानकर ही चलना होगा। नहीं तो हममें से कोई भी उसके विवाह में सम्मिलित न होगा, यह आप समझ रखिये। आप उसके शुभचिन्तक हों तो इतनी बात उसे अवश्य ही बता दीजिएगा।'—मुंशीजी ने उत्तर दिया।

'मैं उसका शुभचिन्तक हूँ या नहीं यह मेरे और उसके सम-

भने की बात है। वह चाहता तो स्वयं अपनी इच्छा से विवाह कर सकता था। आपका बड़प्पन रखने के लिए ही उसने आपसे भी मिल लेने के लिए मुझसे कहा था। इसी कारण अपने काम का हर्ज करके भी मैं आपके यहाँ आया। अब आप यदि अपनी स्वीकृति नहीं ही देते तो लाचारी है। आप लोग चाहें तो बारात में आ सकते हैं, न चाहें तो न आवें। आपकी खुशी। विवाह तो उसका उसी अध्यापिका के साथ होकर रहेगा। यह मैं डिप्टी कलेक्टर ठाकुर ठेंगासिंह बोल रहा हूँ। याद रहे इस विवाह में किसी प्रकार की गड़बड़ी कोई न मचाने पावेगा।'—ठाकुर ठेंगासिंह ने यह कहते-कहते कुर्सी से उठना चाहा।

'अरे हुजूर! आप तो नाराज हो गये। मैं भला आपकी बात काट सकता हूँ। दबंगवा मेरा नहीं, आपका ही लड़का है। जिसके साथ चाहिए खुशी से उसका व्याह कर दीजिए। आपका हुक्म होगा तो मैं क्या सारा गाँव उसके विवाह में सिर के बल दौड़ा जायगा'—मुंशीजी ने घिघियाते हुए कहा।

'बस तो पक्का रहा। आप समधी के रूप में उपस्थित होकर अपना नेग न्यौछावर लीजिए और प्रसन्नतापूर्वक वर-वधू को आशीर्वाद दीजिए। इसी में शोभा है। दबंग की बहू यहाँ गाँव पर भी आ सकती है पर रहेगी यहाँ नहीं। वह विवाह हो जाने के पश्चात् भी यदि चाहेगी तो सेठजी के यहाँ अध्यापिका का कार्य कर सकेगी। यह मैंने दबंग से पूछ और समझ लिया है।'

'सिर माथे हुजूर आपकी आज्ञा'—मुंशीजी ने बनावटी प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा।

'लेकिन हुजूर यह बारात आप ले कहाँ चलेंगे। कानपुर ही या और कहीं। लड़की का असली घर कहाँ है?' एक वृद्ध ग्रामीण ने प्रश्न किया।

'बहुत दूर नहीं, फतेहपुर शहर में ही चलना होगा। यों विवाह कानपुर से भी हो सकता है, पर मेरी इच्छा है कि लड़की के चाचा के घर पर ही बारात जाये'—ठाकुर साहब ने हलवा को चम्मच से मुँह में डालते हुए कहा।

'बेशक बेशक, हुजूर को सब बातों का ध्यान रहता है। क्यों न हो। हाकिम जो ठहरे।'—सभी ग्रामीण एक साथ प्रशंसा करते हुए बोल उठे।

'और हुजूर, मुझसे नाराज तो नहीं हैं न, जो मैंने बेकार हुजूर से सवाल-जवाब किया था'—मुंशीजी ने प्रार्थना के स्वर में कहा।

'नहीं नहीं, कोई बात नहीं। अपने विचार प्रकट करने की स्वतन्त्रता सभी को है। मैं बिल्कुल ही नाराज नहीं हूँ मुंशीजी।' ठाकुर साहब ने हँसते हुए उत्तर दिया।

'बात यह है हुजूर'—एक वयोवृद्ध ग्रामीण पण्डितजी बोल उठे—'लड़की की ओर से विवाह का प्रस्ताव लानेवाला चाहे कोई भी क्यों न हो, एक बार कुछ ही मिनटों के लिए सही, उसे थोड़ी अपमानजनक स्थिति में पड़ना ही पड़ता है। आपने अकबर बीरबल का किस्सा तो सुना ही होगा।'

वृद्ध पण्डितजी किस्से - कहानियों के अक्षय भण्डार थे। प्रत्येक अवसर के योग्य कहानियाँ उनकी जिह्वा पर रहा करती थीं। देहाती समाज उनकी इस विशेषता से पूर्ण परिचित था। सभी लोग उनके इस विशाल कथा - साहित्य के प्रशंसक और भक्त थे। पर अब तक इस अवसर की कोई कहानी उनमें से किसी ने न सुनी थी। सो, सबके सब चिल्ला उठे—कहिए कहिए पण्डितजी, कौन सी कहानी है अकबर-बीरबल की।'

ठाकुर ठेंगासिंह भी अपनी उत्सुकता न रोक सके। कहानी

और लतीफे किसे आकर्षित नहीं करते। उन्होंने भी कहा—अकबर बीरबल का वह कौन सा किस्सा है पण्डित जी।'

पण्डितजी तो चाहते ही थे कि लोग आग्रह करें और वे किस्सा सुनाकर अपनी ज्ञान-गरिमा प्रदर्शित करें। उन्होंने कहना प्रारम्भ किया:—

डिप्टी साहब, कहानी यों है कि एक बार बादशाह अकबर ने राजा बीरबल से पूछा कि कहो भइया बीरबल राजा, तुम्हारी राय में दुनिया में सबसे बड़ा कौन है?' बादशाह समझते थे कि बीरबल राजा पट से कह देंगे—हुजूर आप सबसे बड़े हैं।' लेकिन डिप्टी साहब, बीरबल तो खुशामदी थे नहीं और बात नाप तौलकर सही सही ही कहते थे। सो उन्होंने आव देखा न ताव और झट से कह डाला—हुजूर दुनिया में सबसे बड़ा है 'लड़के का बाप'।

बादशाह को उस समय तक कोई लड़का न हुआ था। सो वे बड़े घबड़ाये। बोले—ऐं बीरबल! तुम यह क्या कह रहे हो? क्या कोई भी ऐरा गैरा नत्थूखैरा जिसको लड़का है वह बड़ा हो जायगा, सबसे बड़ा, और चाहे बादशाह ही क्यों न हो, अगर उसके पास लड़की ही है, लड़का नहीं, तो वह छोटा गिना जायगा?'

'बात तो ऐसी ही है हुजूर' बीरबल ने झुककर सलाम करते हुए जवाब दिया।

'हूं बीरबल राजा! इस बात को तुम्हें साबित करना पड़ेगा। यदि यह बात गलत निकली तो तुम्हें अपने हाथ से कतल कर दूँगा। चौबीस घण्टे की मोहलत दे रहा हूँ तुम्हें! समझे!!' बादशाह ने क्रोध के साथ घोषणा की।

हुजूर डिप्टी साहब, दूसरा कोई होता तो उसके पैर तले से धरती खिसक जाती। पर हमारे राजा बीरबल कोई ऐसे वैसे आदमी न थे। वे सलाम दागते हुए बोले—'हुजूर चौबीस घण्टे

तो बहुत अधिक समय है, मैं जहाँपनाह को चौबीस मिनट के भीतर ही इसका सबूत दे सकता हूँ। आप केवल कमरे के भीतर कुछ देर के लिए छिप जाइये और मैं क्या कहता या करता हूँ उसे सुनते और देखते भी रहिए।'

बादशाह कमरे के अन्दर जाकर बैठ रहे और इधर राजा बीरबल ने एक नौकर को बुलाकर उसे बादशाह के साईस को बुला लाने को भेजा। साईस ने जब सुना कि उसे राजा बीरबल ने बुला भेजा है तो वह घोड़े की लीद उठाना बन्द कर हाँफता-काँपता नौकर के साथ आ पहुँचा और फर्शी सलाम दागता हुआ बोला—हुजूर ने बन्दे को याद किया है यह बन्दे की खुशकिस्मती है। हजूर इर्शाद फरमावें।'

बीरबल ने कहा—क्यों साईस! वाकई तुम खुशकिस्मत हो। तुम पर सिर्फ मैं ही नहीं खुद बादशाह सलामत निहायत खुश है। वह तुम पर कुछ इनायत करना चाहते हैं।

यह सुनते ही साईस ने राजा बीरबल को सत्रह बार सलाम करते हुए कहा—ऐ हुजूर! बादशाह की हजार साल की उम्र हो। खुदा ताला उन्हें रौनक बख्शे जो मुझ पर भी वे इतने मिहरबान हैं। हुजूर, मैं बादशाह सलामत और आपकी जूतियाँ भी उठाने के काबिल अपने को नहीं समझता। आपका और बादशाह सलामत का यह बड़प्पन है जो फिदवी से खुश हैं।

साईस ने सोचा था कि बादशाह जब खुश हैं तो जरूर ही उसे सरकारी अस्तबल का नायब बना देंगे या कौन जाने बादशाह की खफ्त ही तो है दसहजारी मनसबदार ही एकबारगी बना दें। सो मन ही मन वह ईश्वर को करोड़ों धन्यवाद देता हुआ सभी पीरों को चद्दर चढ़ाने की मिन्नतें कर रहा था। दस मिनट

के भीतर उसने बादशाह का जिक्र कर एक सौ बहत्तर बार सलाम किया और राजा बीरबल अब उसे कौन सी खुशखबरी सुनाते हैं इसकी प्रतीक्षा में उत्सुकता दबाये बिल्कुल भकुवा-सा खड़ा था।

"हाँ, तो बात यह है कि बादशाह सलामत तुम पर निहायत खुश हैं। इतने खुश हैं कि तुम्हारे लड़के के साथ अपनी शाहजादी का निकाह पढ़वाना चाहते हैं"—राजा बीरबल ने अपनी मुस्कराहट को दबाते हुए कहा।

डिप्टी साहब आप क्या समझते हैं कि साईसजी मारे खुशी के एकदम उछल पड़े या सीधे बादशाह या बीरबल के गले लग गये। नहीं, ऐसा कुछ भी उन्होंने नहीं किया। उनकी सारी खुशी छूमन्तर हो गयी। कम से कम ऊपर से तो ऐसा ही लगता था। गम्भीरता की मूर्ति बन कर सिर खुजलाते हुए बोले—तो राजा साहब, जरा घर में भी राय कर लूँ। लड़के की शादी का मामला है। एक ब एक कैसे जवाब दिया जा सकता है।"

भीतर कमरे में बादशाह का हँसते-हँसते बुरा हाल था। वे बाहर निकल आये तो साईस भौचक्का रह गया। बीरबल ने कहा—अब तुम जा सकते हो। तुम्हारे यहाँ की शादी की बात यों ही थी। यह बात तुम किसी से कहना मत। और बादशाह अकबर ने बीरबल को अपने गले का हार उतार कर पहनाते हुए कहा—'शाबास बीरबल, शाबास।'

पण्डितजी की कहानी सुनकर उपस्थित सभी लोगों ने एक स्वर से कहा—शाबास बीरबल शाबास! और हमारे गाँव के पण्डितजी आपको धन्यवाद। आप किस बीरबल से कम हैं।

लोग इस कहानी को सुनकर खूब हँसे। ठाकुर ठेंगा सिंह तो मुस्करा कर ही रह गये पर मुंशीजी ने घनघोर अट्टहास किया।

१४

पत्नी-प्रताड़ित संघ की यह आठवीं बैठक है। नगर के दक्षिणी भाग में, एकदम छोर पर, एकान्त निर्जन मैदान में इसकी बैठकें हुआ करती हैं। इस संस्था की स्थापना हमारे महाकवि युगान्तरजी के अथक परिश्रम से हो पायी है। अब तक इसके बहत्तर सदस्य भी बन चुके हैं। लोगों ने सर्वसम्मति से युगान्तरजी को ही इनका आजीवन सभापति भी चुना है। इसकी कार्य-समिति में योग्यता के ही आधार पर लोग लिये जाते हैं। जैसे मान लीजिए, पत्नी के कलह से ऊबकर जो एक से अधिक बार आत्म-हत्या का प्रयास कर चुका हो वही इसका सभापति या मन्त्री हो सकता है। जो केवल पत्नी से कलह में हार कर घर से एकाध बार भागा ही हो—मानसिक शान्ति के विचार से, आत्महत्या के विचार से नहीं वह उपाध्यक्ष और उपमन्त्री ही हो सकता है। जो पत्नी के पौना, पलटा, कलछुल या बेलना से एक से अधिक बार आहत हो चुका हो वह कार्य-समिति का सदस्य होने की योग्यता रखता हुआ माना जा सकता है।

इस संघ के कोषाध्यक्ष हैं लाला भग्गूलाल। पत्नी इन्हें एक बार मारने उठी थी तो ये छत पर से कूद पड़े थे। तभी से लँगड़े हैं।

संघ अपनी कोई भी बैठक किसी इमारत, किसी कमरे में नहीं करता। इसका दृढ़ विश्वास है कि वैज्ञानिक मानें या न मानें पर दीवाल को भी कान होते हैं।

संघ का आदर्श या परिचयात्मक 'मोटो' है :—

"पत्नियों से रंग जिनका हो रहा बदरंग है।
अंग-भंग-प्रवीण जिनकी पत्नियों का ढंग है।

संग जिनकी पत्नियों के नित्य बाण-निषंग है।
यह उन्हीं का संघटन "पत्नी प्रताड़ित संघ है।"

आज की बैठक में कुछ आवश्यक, बहुत ही आवश्यक बातों पर विचार-विनिमय करना था। इस कारण प्रायः सभी सदस्य उपस्थित थे।

बात यह है कि चार नये सदस्यों की भर्ती भी आज ही करनी थी। यह देख लेना था कि वे वास्तव में पत्नी-प्रताड़ित हैं या केवल ढोंग करते हैं या जासूसी करने आये हैं।

दूसरा विषय जो विचारणीय था वह यह था कि पत्नियों को 'अल्टिमेटम' कब, किस तारीख को दिया जाय।

तीसरा विषय था—सत्याग्रह की रूप-रेखा पर विचार।

युगांतर जी ने प्रस्ताव किया—'हाँ, साहब, जो चार सदस्य नये आये हैं और जिन्हें अभी तक विधिपूर्वक सदस्य नहीं बनाया जा सका है, उनके प्रार्थना-पत्र पर विचार कर लिया जाय और जब सब सदस्यों की पूरी दिलजमई हो ले तब उन्हें शपथ ग्रहण कराकर संस्था के नियम बतला दिये जायँ।'

सभी सदस्यों ने हाथ उठाकर और सिर हिलाकर इस बात को पसन्द किया और बारी-बारी से एक एक करके नये सदस्यों से जिरह होने लगी।

लाला लतिहरलाल ने पूछा—हाँ, तो बाबू अभागे रामजी, आपकी पत्नी आप पर क्या-क्या अत्याचार करती हैं, शीघ्र ही एक साँस में कह जाइये।

बाबू अभागे राम ने हाँफते हुए कहा—क्या बताऊँ, मुझ पर जो-जो मुसीबतें पड़ती हैं, उनकी आधी भी यदि आपमें से किसी पर पड़तीं तो आपका मलीदा बन जाता।

युगान्तरजी ने टोंका—भूमिका और टिप्पणी बन्द करिये। 'फैक्टस ऐण्ड फिगर्स' दीजिए जनाब। ठोस उदाहरण चाहता हूँ।

'मेरे सिर को देख रहे हैं न ? कितने बाल बच गये हैं ? यह गञ्जी खोपड़ी किसकी करनी है ? दफ्तर जाते समय केवल तीन आने पैसे मिलते हैं। उन्हीं में रिक्शा करो चाहे नाश्तापानी, पैदल आओ या भूखे रहो। सारी कमाई हथिया कर बैठ जाती हैं। महीने के आखिरी सप्ताह में ही घोषणा हो जाती है—वेतन समाप्त हो गया। कल से ६ पैसे ही रोज मिलेंगे। उस दिन मैंने दो आने माँगें तो इतना चीखीं चिल्लाईं कि मेरा कलेजा धड़कने लगा।'

"अभागे रामजी, हम सब आपको सहर्ष अपने 'फोल्ड' में लेते हैं। अब आप चुप रहिये, नहीं तो हम सबका भी कलेजा धड़कने लगेगा।"

सभी सदस्यों ने एक साथ कहा।

'अब पण्डित निराशचन्द ओझा अपनी आपबीती सुनावें'—अध्यक्ष युगान्तरजी ने अपने आँसू पोंछते हुए कहा।

'क्या बताऊँ अध्यक्षजी, मैं तो जीवन से ऊब उठा हूँ। पत्नी जीने मुझे कुत्ते से भी अधिक अपदार्थ समझ लिया है। स्वयं ९ बजे के पहले सोकर उठने का नाम नहीं लेतीं। मैं ही तड़के पाँच बजे उठकर चाय और जलपान बनाता हूँ। मुझसे ही सारे सामान मँगवाती हैं और पुरस्कार-स्वरूप मुझे झिड़कियाँ भी सुननी पड़ती हैं—'तुम्हें सामान खरीदने का सहूर नहीं है। तुम्हें कपड़े की पहचान नहीं है। तुम्हें मोल-भाव करना नहीं आता। मुँहमाँगा दाम दे आते हो। तुम निरे घोंघा हो।' अब बताइये खसी जी से जाय और खवैया को स्वाद न मिले तो कैसा दुर्भाग्य है'—इतना कहकर ओझाजी भुलुक-भुलुक रोने लगे।

'मत रोइये, मत रोइये, नहीं तो हम सब भी रोने लग जायँगे आप अवश्य ही हमारे संघ के गौरवस्वरूप सदस्य सिद्ध होंगे'—सभी सदस्यों ने सहानुभूतिपूर्वक कहा।

'अब मुंशी डरपोकचन्द अपनी कथा सुनायें' युगान्तरजी का आदेश हुआ।

मुंशीजी बोले—'क्या सुनाऊँ। आप सब सुनकर भी क्या मेरा दुःख बाँट लेंगे? मैं आफिस से थका-माँदा सन्ध्या के ७ बजे घर लौटता हूँ तो क्या देखता हूँ पत्नीजी सिनेमा जाने की तैयारी कर रही हैं। बी० ए० पास हैं—मैं कुछ कह भी नहीं सकता। जब तक सहेलियों के साथ जाती थीं, तब तक तो कोई बात न थी। अब अपने पुराने सहपाठियों-युवकों के साथ भी चल देती हैं। मैं टुकुर-टुकुर ताकता रह जाता हूँ। ऊपर से प्रतिमास सिनेमा के लिए दो एक साड़ी अपनी घूस की रकम से खरीदनी पड़ती है। कारण वेतन तो वे पूरा का पूरा पहली तारीख को ही रखवा लेती हैं।'

सबने मुंशीजी को सम्मानित सदस्य बना लिया। सेठ दुःखीमल ने सबका इशारा पाकर अपनी गाथा प्रारम्भ कीः—

'परसों उनके पालतू कुत्ते ने मेरी बही पर दावात गिरा दी। मैंने उसे चौकी पर से ढकेल दिया कि मानो प्रलय मच गया। उन्होंने भोजन नहीं बनाया। चूल्हे में पानी डाल दिया। दिन भर निर्जला एकादशी रही। जब उनके कुत्ते को गोद में लेकर चुमकारा-पुचकारा तब कहीं जाकर उनका पारा नार्मल पर उतरा।'

'आप भी सदस्य हो सकते हैं'—सदस्यों ने अपना निर्णय सुनाया।

अल्टिमेटम के लिए निश्चय हुआ कि अभी दो एक मास तक धैर्यपूर्वक और देख लिया जाय। नहीं तो एक साथ ही सभी

सदस्य 'आत्महत्या' का 'अल्टिमेटम' दे देंगे। सत्याग्रह के बारे में यह राय हुई कि स्वतन्त्र भारत में सत्याग्रह और अनशन करना उचित नहीं। जब अपनी सरकार के विरुद्ध जनता का सत्याग्रह करना अनुचित है तो अपनी ही पत्नियों के विरुद्ध सत्याग्रह या अनशन किस प्रकार उचित कहा जा सकता है ?

१५

लाख छिपाने का प्रयत्न करने पर भी 'पत्नी-पीड़ित-संघ' के सारे समाचार नगर की महिलाओं को प्राप्त हो गये। बात यह है कि 'संघ' के मन्त्री महोदय ने संघ के कागज-पत्र पैण्ट की जेब में रख दिये थे जिन्हें निकाल कर घर पर मेज की दराज में रख-कर बन्द कर देने का उन्हें स्मरण न रहा। धोबी को कपड़ा देते समय उनकी धर्मपत्नी मेधाविनी देवी ने जब उन कागज-पत्रों को पढ़ा तो वे चौंक पड़ीं। फिर उसी दिन तीन चार घण्टों के भीतर ही सारे नगर का नारी-समाज भी इस समाचार को सुनकर चौकन्ना हो गया।

पिछले एक सप्ताह से महिलाएँ घर-गृहस्थी के काम से काफी हाथ खींचकर घर-घर 'फुसुर फुसुर' करती दिखलायी पड़ रही थीं। आज उन्होंने युगान्तरजी की पत्नी की अध्यक्षता में ठाकुर ठेंगासिंह के घर पर नगर की महिलाओं की विराट सभा का आयोजन कर ही दिया।

यह देखिए ! ठाकुर साहब की पत्नी सुयशमालिनी तथा उनकी साली बसन्तमालिनीजी मीटिंग की तैयारी में दत्तचित्त हैं। हाल सजाया जा रहा है, मजदूरिनें दौड़-दौड़कर चादर, तकिया, कालीन ला रही हैं। कोई दासी पान बना रही है। कोई जलपान की तश्तरियाँ लगा रही है।

सुयशमालिनीजी ने एक चादरे को क्रोध के साथ फेंकते हुए कहा—अरे हिरुआ की माँ, तुझसे यह चादर ले आने को किसने कहा था ! और ये कौन से गिलाफ ले आयी है ? तुझे इतना समझाया था कि कल जो सी कर आये हैं वे गिलाफ ले अइयो। और चादर भी जो कल बजाज दे गवा है ऊहै न लावै के रहा ?

'नहीं दीदी, मैंने ही हिरुआ की माँ को मना कर दिया था। भला बेधुले गिलाफ और चादर बिछेंगे तो लोग क्या कहेंगी'—बसन्तमालिनीजी बोलीं।

'कहेंगी क्या ? कोई गन्दे थोड़े ही हैं। धोबी के धुलाये कपड़न से कोई कम साफ थोड़े ही हैं।'

'हाँ, सो तो ठीक है, पर लोग कहेंगी क्या ? बिना धुलाये कपड़े, चाहे वे लाख साफ हों, नहीं इस्तेमाल किये जाते। फैसन नहीं है ?' बसन्तमालिनी ने उत्तर दिया।

'अच्छा भई, करो फैसन के ही हिसाब से। अब तुम लोगन का जमाना है। हमारे बखत में ई सब ऐसन फैसन नहीं रहा।—श्रीमती सुयशमालिनी कुछ खीझकर बोलीं।

'वाहरे दीदी वाह ! मालूम पड़ता है बुढ़ाय गयी हो। हमसे सात ही साल तो बड़ी हो ! फिर यह जमाना और बखत की दुहाई की एकै रही। जीजाजी तो जमाना और बखत की दुहाई नहीं देते जब कि तुमहूँ से ऊ तीन चार साल बड़े ही होइहैं।' बसन्तमालिनीजी बोलीं।

'अरे बसन्तो ! जीजाजीकी बात छोड़ ! उन्हें इस तरह के दोस्तमित्रन में, हाकिम हुक्कामन में घूमै रहै के होत है, ऊ अगर फैसन का खयाल न रक्खैं तो चलै कैसे। उन्हें तो रंग-ढंग से बन सँवरकर रहना ही पड़ेगा। पर हमारी बात अब दूसरी है। मुझे कहाँ आना जाना है।'

'तो कभी जाती क्यों नहीं। क्या जीजाजी ने कोई रोक लगायी है। अभी उसी दिन सिनेमा जाने के लिए कितना हठ कर रहे थे, पर तुम गयी ही नहीं। फिर इसमें जीजाजी का क्या दोष?'

'उन्हें दोष कौन देता है? मैं स्वयं नहीं जाना चाहती। जितना समय सिनेमा बाइस्कोप में बर्बाद करूँगी उतने में तो गृहस्थी का कोई काम निबटाऊँगी।'

"तुम दीदी डिप्टी की पत्नी होकर हर समय गृहस्थी का काम ही निबटाती रहती हो। इतने दास-दासी किसलिए हैं? फिर कभी-कभी मानसिक विश्राम भी तो चाहिए। हर समय कपड़े काटना और अँचार डालते रहना कौन-सी अच्छी बात है?'

'अभी क्वाँरी है न। विवाह हो लेने दे तो पूछूँगी। जब चार बच्चे हो जायँगे तब यह सब उपन्यास और सिनेमा का शौक न रह जायगा।'

'चलो रहने दो। मेरे लिए—अरे वह तो युगान्तरजी की पत्नी आ पहुँची। आइए बहिनजी, आप ही सब से पहले आनेवाली हैं। और लोग कहाँ रह गयीं—' वसन्तमालिनी ने युगान्तर जी की पत्नी श्रीमती सिरोमनिजी की ओर घूमते हुए कहा।

'क्या अभी और लोग नहीं आयीं—' हाँफते-हाँफते सिरोमनिजी ने कहा—'तभी तो पुरुषवर्ग को हमारा परिहास करने का अवसर मिलता है। वे यही कहते हैं कि नारियों को तैयार होने में घण्टों लग जाते हैं, वे कभी समय से काम नहीं कर सकतीं?'

'कौन समय से काम नहीं कर सकता बहिन?' कहती हुई सर्वश्री कुरङ्गी, लवङ्गी, सुषमा, निरुपमा, बीना, मीना, उजालो, समालो, धनदेई, बनदेई, सुखमढ़ी और नकचढ़ी आदि महिलाएँ एक साथ ही आँगन में घुस पड़ीं।

'आओ बहिन आओ। अभी-अभी हम लोग सोच ही रहे थे कि सभानेत्रीजी तो आ गयीं पर सभा की सदस्या लोग कहाँ रह गयीं ?' सुयशमालिनी ने कहा।

'तुम्हें क्या बहिन ? डिप्टी साहब की पत्नी ठहरीं ? मिसिराइन ने बनाकर थाली परोस दी। हम लोगों को तो दोनों जून चूल्हे से निबटना होता है। जब पतिदेव दफ्तर और लड़के स्कूल चले जायँगे तभी तो घर में से निकास हो सकेगा न ?'—श्रीमती नकचढ़ीजी ने उत्तर दिया।

'नहीं, नहीं नक्को बहिन, ऐसा न कहो। डिप्टी साहब की पत्नी होते हुए भी 'सुया' दीदी जितना घर-गृहस्थी का काम देखती हैं उतना हम लोग दस जनी मिलकर भी नहीं देख-सम्हाल सकतीं— श्रीमती सुषमा ने कहा।

'होगा, पर यह तो बताओ मेधा दीदी कहाँ अटक गयीं। हमसे तो कहती थीं—नक्को दीदी, जल्दी पहुँचना, और खुद देखती हूँ तो गायब हैं। आग लगाय जमालो दूर खड़ी।'

'ओ हो ! नक्को दीदी नाराज हो रही हैं क्या ?' कहती हुई श्रीमती मेधाविनीजी ने, हँसते हुए प्रवेश किया—'काहे दीदी, कहाँ आग लगायी है मैंने। मैं तो आग बुझानेवालियों में हूँ। अच्छा लो मैं आ गयी। अब देर होय तो हमें दोष न दीजिये। अब सभा की कारवाई आरम्भ करो।'

अस्तु सभा की कार्यवाही आरम्भ हुई।' पत्नी-पीड़ित-संघ की नियमावली की नकल, उसके पदाधिकारियों और सदस्यों के नाम आदि की पूरी सूची मेधाविनीजी के पास ही थी। असली कागज-पत्र की नकल तैयार कर ली गयी थी। और मजा यह कि 'संघ' वालों को इसकी कल्पना भी न हुई कि उनकी सारी एकान्त कार्यवाही इस प्रकार प्रकट हो चुकी है।

सबने नारी-जाति के संघटन का भी निश्चय सर्वसम्मति से किया। अब संस्था के नामकरण की समस्या उठी। बीनाजी ने कहा—'उसी संस्था के जोड़ का नाम रखना चाहिए अर्थात् 'पति-पीड़ित-संघ'। लोगों ने तुरन्त ही विरोध किया—'हम अपने को पीड़ित स्वीकार नहीं कर सकतीं। इसमें हमारी हेठी है। पीड़ित हो हमारा दुश्मन। हम क्यों पीड़ित होने लगीं।'

'जिसे पीड़ित हम न करें।' 'हमें कोई क्या पीड़ित करेगा।' 'तब क्या बहिन! पति-पीड़क संघ नाम होता तो कोई बात भी थी?' ऐसी आवाजें चारों ओर गूँज उठीं।

बीनाजी बोलीं—किन्तु एक बात यह भी तो सोचिये। आप पीड़ित भले ही न हों और यह भी मान लेती हूँ कि आप लोग 'पीड़क' भी हैं अर्थात् बेचारे पतियों को आप स्वयं पीड़ा पहुँचाती हैं, तथापि जनता की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए अपने को पीड़ित कहने, बतलाने, घोषित करने में हर्ज ही क्या है? फिर सभी पति भी क्या पीड़ित हैं? मै तो कहती हूँ कि कोई भी पीड़ित नहीं, बल्कि पीड़क ही है। मगर नाम रखा उन लोगों ने पत्नी-पीड़ित-संघ। केवल सम्पादकों और जनता का समर्थन प्राप्त करने के लिए। कितने ही शोषक लोगों ने अपने 'शोषित संघ' बना रखे हैं?'

'तो इसका नाम 'पीड़ित-पत्नी-संघ' क्यों न रखा जाय? उल्टे पतियों पर ही दोष गढ़ देना कैसा मजेदार होगा! मीनाजी बोलीं।

'ना भाई पीड़ित - सीड़ित शब्द हटा ही दो। और संस्था बनानी ही है तो 'पति' और 'पत्नी' का झगड़ा भी समाप्त करो। पति-पत्नी आपस में निपट लेंगे। उसमे पंचों की जरूरत ही क्या है। कितने ही दिगड़ैल पतियों के दिमाग दुरुस्त कर दिये

गये हैं। बड़े-बड़े तीसमार खाँ टेकुआ के धार हो गये हैं।'—सुखमढ़ीजी ने मुस्कराते हुए कहा।

"ठीक तो है। नारी की सीमा केवल पत्नी होने तक ही तो है नहीं। वह बेटी भी है, माँ भी है। कई रूप हैं उसके। कितनों ने विवाह किया ही नहीं। कुछ विधवाएँ भी हैं। इसलिए केवल 'पत्नी-संघ' से सबका काम नहीं चल सकता।'—लवंगीजी बोलीं।

'यह तुमने वकील की बीबी लायक ही बात कही'—कुरंगीजी प्रशंसा के स्वर में बोलीं—सचमुच नाम कुछ दूसरा ही होना चाहिए।

'तो महिला-जागरण-संघ' नाम कैसा रहेगा'—मेधाविनीजी ने प्रश्न किया।

ठीक तो है, परन्तु एक बात हमें यह भी सोच लेनी चाहिए कि 'जागरण' और 'संघ' शब्द व्याकरण के अनुसार पुल्लिंग हैं। महिलाओं की सभा का नाम स्त्रीलिंगवाचक शब्दों का हो तो अधिक अच्छा।' मीनाजी ने कहा।

और आजकल संस्थाओं का नाम संक्षेप में पुकारने की भी तो प्रथा चल पड़ी है। जैसे यू० एन० ओ०। सब लोग हमारी संस्था को म० जा० संघ कहने लग जायँगे'—कुरङ्गीजी ने टिप्पणी की।

'हाँ, हाँ, यह तो दीदी तुमने ठीक कहा। अच्छा 'नारी-जागृति-समिति' नाम रख लो? कोई हर्ज है?

'ठीक है ठीक है। नाम के बारे में अधिक समय मत बर्बाद करो। आगे बढ़ो। अब क्या करना है?'—नकचढ़ीजी बोलीं।

'सभापति अरे सभानेत्री और मन्त्रिणीजी किन्हें बनाया जाय।'—मेधाविनीजी बोलीं।

'मेरी तो राय है'—सुयशमालिनीजीने मुस्कराते हुए कहा—

युगान्तरजी की पत्नी सिरोमनिजी सभानेत्री और मेधाविनीजी मन्त्रिणी बनें, कारण उधर उन लोगों की ओर इन्हीं दोनों के पतिदेव अध्यक्ष और मन्त्री हैं।'

महिलाओं ने इस पर खिलखिलाकर हँसते हुए इस प्रस्ताव को सर्वसम्मति से स्वीकार किया। केवल नकचढ़ीजी उतनी प्रसन्न नहीं दिखाई दीं।

'अच्छा अब जरा जल्दी-जल्दी आगे का काम बढ़ाओ। काहे से कि हमें चार बजे के पहले ही घर पहुँच जाना है। ऊ ठीक चार बजे दफ्तर से घर वापस आ जात हैं'—नकचढ़ीजी ने कहा।

'वाह नक्को दीदी, इत्ता डरऽथू तब तऽ तूँ सभा सुसाइटी क काम कर चुक्यू! जीजाजी खाय थोड़े जइहैं तोको, अगर तनी देर हो जाई तो।' श्रीमती सुखमढ़ीजी ने हँसते हुए कहा।

'अरे तुमहूँ नक्को दीदी के नाहीं पहिचान्यू। ई भला दुनिया में के के डरिहैं, जे इनसे न डरै? बात ई है कि देर करै से जीजाजी अकेला पाय के इनका सारा धरा ओसारा सामान अहड़-बहँड़ कर देइहैं और इनहू का हिस्सा जलपान खाय जा सकत हैं। और ऊपरी आमदनी जो आज भई हुईहै ओम्में से कहीं कुछ छिपाय उपाय दे सकत हैं। ई मौजूद रहिहैं तो पूरी की पूरी आमदनी रखवाय न लेइहैं।'

'ओ हो, तो ई बात है नक्को बहिन'—कहकर सारी महिलाएँ अट्टहास कर उठीं।

अस्तु, नियमावली बनाने के बारे में एक उपसमिति संघटित कर दी गयी जिसकी नकचढ़ीजी संयोजिका बनायी गयीं।

इसके बाद पुरुषों के अधिकार और कर्तव्य के बारे में उजालो जी ने एक व्याख्यान दिया जिसका सारांश यहाँ दिया जा रहा है—

बहिनो ! पुरुषों के अधिकार घर के बाहर हैं। घर के भीतर नहीं। कहा भी है 'गृहिणी गृह उच्यते'। बाहर चाहे जितनी शेखी बघार लो, घर में आकर बिना चीं-चपड़ किये रहा करो। कहा भी है—'बाहर टेढ़ो फिरत है, बाँबी सूधो साँप।' सो घर मे पुरुष जाति को पत्नी के अधीन रहना ही होगा। हाँ, कमाने का अधिकार जो उसे युगों से प्राप्त है, उसे हम छीनना नहीं चाहतीं। बेशक खर्च करने का अधिकार उसे नहीं दिया जा सकता। खर्च करने का उसे सहूर भी तो हो। मोलभाव करना वह जानता नहीं। जो दाम तरकारीवाली ने माँगा, उसे दे दिया।'

"उहुँक, हमारे पड़ोस में एक आचारीजी हैं जो बथुआ का साग खरीदने में सागवाली से घण्टों उलझा करते हैं।"

—सहसा मीनाजी ने टोकते हुए कहा।

"हो सकता है आचारीजी ऐसे हों। पर वे रँडुआ तो नहीं हैं ?" एक ने प्रश्न किया।

"हाँ बहिन, हैं तो रँडुआ ही" मीनाजी बोलीं।

"तभी। यदि पत्नीजी जीवित होतीं तो इस प्रकार घण्टों उलझने का मजा कभी का उन्हें मिल गया होता।"

"वही तो"--उजालोजी ने भाषण पुनः चालू किया—

"हम नहीं चाहतीं कि लोग बिना मोलभाव किये ही सामान खरीद लें, पर यह भी नहीं चाहतीं कि तरकारी वालियों से घण्टों बहस करते रहें। अच्छा तो यह होता कि यह सभा प्रस्ताव पास कर देती कि पुरुष लोग पुरुषों से ही सामान खरीदा करें।"

सभा में कई बार "नहीं, नहीं के शब्द ! "वे चाहे जिस वाले या वाली से खरीदें, कम समय और कम दाम में खरीदें।"

"घर में जो कच्चा-पक्का खाना मिले, सीधे से खा लिया करें। 'रसोई ठीक नहीं बनी' यह कहने पर उनके लिए किसी दण्ड की

व्यवस्था भी होनी चाहिए। एक तो चूल्हे में जलकर खाना पकाओ और यदि दाल में तोला दो तोला नमक अधिक ही हो गया या तरकारी में छटाँक आधी छटाँक हल्दी ज्यादा पड़ गयी तो ये नवाब लोग मुँह बिचकायेंगे। स्वयं पकाना पड़े तो मालूम हो। दफ्तरों में कुर्सी पर बैठे-बैठे गप्पें लड़ाते हैं और कहते हैं बड़ा काम करना पड़ता है। ऐसा काम करना पड़े तो कौन न करे ?

"बिल्कुल ठीक, बिल्कुल ठीक" की आवाज !

"बहिनो" ! उजालोजी बोलती गयीं—बच्चे क्या पहनें-ओढ़ें, क्या खायें-पियें इससे 'पिता' नामधारी प्राणी या जन्तु से कोई लगाव न होना चाहिए। माँ बच्चे को दुलारे या मारे, तुम बीच में बोलनेवाले कौन होते हो ? तुम दफ्तर देखो, घर से तुमसे मतलब ? तुम हाकिम होते हो, मन्त्री होते हो, नेता होते हो। घर पर भी तुम रोब गालिब करो, यह नहीं हो सकता।

"तो अब स्त्रियाँ भी तो मन्त्री हो रही हैं"—एक आवाज।

"तो बुरा क्या है ? क्यों न मन्त्री हों ? हम तो चाहती हैं कि पूरा का पूरा मन्त्रिमण्डल ही स्त्रियों से निर्मित हो। कम से कम किसी एक प्रान्त में तो विशुद्ध महिला-मन्त्रिमण्डल रहना चाहिए। या ऐसा न हो सके तो कम से कम प्रान्तों का प्रधान मन्त्री पद तो महिलाओं को ही मिलना चाहिए। दस-बीस पुरुष मन्त्रियों के बीच एक महिला मन्त्री चुनकर यह नारीजाति को फुसलाने का ढंग ठीक नहीं। "उजालोजी ने आवेश के साथ कहा और आगे भी कहती गयीं,—बहिन, मैं तो चाहती हूँ कि मन्त्रिमण्डल में एक भी महिला सदस्य न रहे, वरन् हरएक प्रान्त की गवर्नरी किसी महिला को ही दी जाय। 'गवर्नर' का पद महिला को मिलना ही चाहिए।

"गवर्नर नहीं, राज्यपाल शब्द का व्यवहार कीजिए"—एक आवाज।

"आपका कहना ठीक है, परन्तु हमारे प्रान्त के माननीय गवर्नर साहब को 'राज्यपाल' शब्द पसन्द नहीं है, इस कारण मैंने भी जान-बूझकर 'गवर्नर' शब्द का व्यवहार किया है। खैर, इसी प्रकार प्रत्येक हाईकोर्ट में चीफ जस्टिस का पद भी किसी महिला को ही मिलना चाहिए।"

'एक बात और। हम नारियाँ पुरुषों की दुम समझी जाती हैं। पुरुष के नाम में मिसेज या श्रीमती जोड़कर हमें सम्बोधन किया जाता है यह स्पष्ट रूप में हमारी हीनता सूचित करता है। सुषमा के पति राजीव के नाम पर सुषमा को मिसेज राजीव क्यों कहा जाय, राजीव को मिस्टर सुषमा कहकर पुकारने में किसी को क्या आपत्ति है।'

इस वाक्य पर नारियों में बड़ा कहकहा मचा।

'आप हँसती हैं। पर इन छोटी-छोटी बातों के सहारे ही पुरुष जाति का मिजाज बहुत बढ़ गया है। कचहरी अदालत में भी बच्चे के साथ पिता का ही नाम जुड़ता है माँ का नहीं, यह भी उचित नहीं। दस महीने ढोयें हम, नाम बाप का हो। यह कहाँ का न्याय है? इन्हीं सब अनुचित अधिकारों को लेकर और हमें त्यागमयी, दयामयी, सेवामयी स्नेहमयी, तथा 'नारी तुम केवल श्रद्धा हो' कहकर पुरुषों ने हमें बहका फुसला लिया और समाज पर शासन करते रहे। पर अब यह सब बन्द करना पड़ेगा।

'बहिनो, हमें संघटित होकर अपनी माँग जनता और सरकार सभी के सामने रखनी होगी। रेलों में तीस-चालीस डब्बों के बीच एक या दो जनाना डब्बा जोड़ देने से काम न चलेगा। कम से कम जनाने डब्बों की संख्या बराबर तो करनी ही पड़ेगी।

उन डब्बों में गद्दे तनिक अच्छे हों, पंखे अधिक हों और उनमें दो एक दाइयाँ भी नियुक्त रहें जो पानी पिला सकें।

बसों की दशा और भी विचित्र है। विश्वविद्यालय या कालेज जानेवाली बस हो या स्टेशन जानेवाली, दस पाँच महिलाओं के ही बैठने की व्यवस्था रहती है। फल यह होता है कि अधिक स्त्रियों के आ जाने पर उनमें से अधिकांश को खड़ी रहना पड़ता है, और पुरुष लोग आजकल पढ़-लिखकर ऐसे असभ्य हो गये हैं कि मजे में बैठे रहते हैं, अपनी माँ-बहिनों को स्थान देने में उनकी शान में बट्टा लगता है। उलटे गन्दे इशारे करने या धक्का देना अवश्य सीख लिया है। यह है हमारी वर्तमान शिक्षा में पले नवयुवकों की दशा।

मैं चाहती हूँ कि जब तक युवक या पुरुष-समाज सभ्य न हो ले, तब तक महिलाओं के लिए 'स्पेशल बस' या 'स्पेशल-ट्रेन' की व्यवस्था हो।

'और'—नकचढ़ीजी ने खड़ी होकर कहा—कजरी, तीज, तथा ललही छठ को भी दफ्तर और स्कूल बन्द करने का प्रबन्ध होना चाहिए। उस दिन हम सब स्त्रियाँ व्रत भी रहें और रसोई बनाकर पति-पुत्र को दफ्तर तथा स्कूल भेजें यह नहीं हो सकता।'

१६

फतेहपुर के 'कबाड़ी' गाँव में लाला आलिमप्रसाद का बड़ा रोबदाब है। यद्यपि लालाजी गाँव पर कम ही रहते हैं, दलाली के सम्बन्ध से प्रायः कलकत्ता, बम्बई और अहमदाबाद में ही घूमते रहते हैं, फिर भी 'कबाड़ी' वाले इनका बड़ा आदर करते हैं। इनके पिता मुंशी निर्दयी लाल गाँव के पटवारी रह चुके थे। उनके

भी पिता लाला बेरहमचन्द दारोगा के मुंशी और उनके भी पिता लाला घिराऊलाल अपने जमाने में गाँव के सरपंच और चौधरी थे। इस कारण इनके परिवार की गाँववालों पर पुश्तैनी धाक है।

इन्हीं मुंशी जालिमप्रसाद की भतीजी कुमारी सकसेना का शुभ-विवाह आज कानपुर जिले के 'झकझक' गाँव के निवासी मुंशी बुद्धूलाल के सुपुत्र श्रीदबंगलाल के साथ होनेवाला है। गाँववाले बारात के स्वागत की तैयारी में लगे हुए हैं। कोई सड़क बुहार रहा है, कोई पानी छिड़क रहा है, कोई आटा सान रहा है, कोई केवल चिल्ला रहा है।

कुमारी सकसेना एक सप्ताह पूर्व से ही ठाकुर ठेंगासिंह के साथ गाँववाले घर पर आ गयी हैं। गाँव के इस घर में केवल चाचा-चाची हैं और तीन चचेरे भाई तथा सात चचेरी बहिनें। सरला की माँ नहीं, बाप नहीं। इसी कारण यह घर उसे काटने दौड़ता था और वे यहाँ कभी नहीं आती थीं। पर ठकुर ठेंगासिंह के लाख समझाने पर भी मुंशी जालिमप्रसाद कानपुर शहर से विवाह करने को सहमत नहीं हुए। इसलिए गाँव से ही विवाह होने का निश्चय किया। ठाकुर साहब सब समझा बुझाकर और सरला को गाँव पर पहुँचा कर कानपुर लौट गये। बारातवाले दिन लौटकर आने की बात कह गये।

मुंशीजी ने साफ कह दिया था कि 'तिलक न दूँगा। मुझे सात-सात लड़कियाँ ब्याहनी है।' यद्यपि चार का विवाह हो चुका था, केवल तीन का ही करना शेष था। ठाकुर साहब ने कहा था—'एवमस्तु, लड़का स्वयं तिलक दहेज नहीं चाहता उसके पिता मुंशी बुद्धूलाल इस बात से रुष्ट भी हैं, पर लड़का शिक्षित है और दहेज-प्रथा के विरोध में कई लेख लिख चुका है। सो, आप

दहेज के झंझट से सर्वथा मुक्त है। हाँ, बारात की खातिर ठिकाने से होनी चाहिए।'

\+ \+ \+

'बारात आ गयी, बारात आ गयी' का शोर सारे गाँव में गूँज उठा। लड़के, बूढ़े सभी बारात देखने दौड़ पड़े। 'बस' से बारात आयी थी। जनवासा एक प्राइमरी स्कूल के हाते में दिया गया था। वहीं आकर बाराती लोग उतर पड़े और मुँह हाथ धोने लगे। पर जलपान नाश्ता का कोई चिह्न भी न था। एक बहरा कहार केवल हाथ मुँह धुलाने के लिए वहाँ तैनात था।

पूरे एक घंटे तक प्रतीक्षा करने के बाद भी जब किसी ने जलपान नहीं भेजा तो मुंशी बुद्धूलाल भभक उठे—देखा, मैं पहले ही कहता था कि इस विवाह में बड़ा कष्ट होगा। ठाकुर ठेंगासिंह ने क्या-क्या रूपक दिये थे! यह स्वागत होगा! वह स्वागत होगा! अब श्रीमान् का कहीं पता ही नहीं है। लड़की-वाले घर में मानो सो रहे हैं। कहाँ है वह नौकर जो मुँह हाथ धुला रहा था? बुलाओ उसे। जाकर कह दे समधी साहब से कि फौरन आकर मुझसे मिलें...।

कहार मुँह हाथ धुलाकर, एक कोने में बैठा बीड़ी पी रहा था। वह मुंशी बुद्धूलाल के सामने लाया गया।

मुंशीजी लड़के के बाप थे। अपने को इस समय वाजिद से कम महत्वपूर्ण नहीं समझते थे। डाँट कर बोले—क्यों रे, कहाँ हैं तेरे मालिक लोग? हाथ मुँह धोये घण्टा भर से ऊपर हो गया। जलपान कब आयेगा? या स्नान ध्यान भी कर लेना होगा तब नाश्तापानी के दर्शन होंगे?

कहार ने प्रसन्न होते हुए कहा—हाँ मालिक, कल नहार के बाद दर्शन किहो। इहाँ से तीन कोस पर तो है मन्दिल बरम

बाबा का। बड़े जागता देवता हैं। गाँव में जे आवत है सबै दरसन करत है।'

बरातियों की समझ में बात आ गयी कि नौकर महोदय कुछ ऊँचा सुनते हैं। कौन जाने, जान-बूझकर ऐसा नौकर भेजा गया हो जो बरातियों की कोई बात ही न सुन सके। यह सब चालबाजी है! चालबाजी! इसका जवाब देना होगा और ठाकुर ठेंगासिंह से भी शिकायत करनी पड़ेगी। पर ठाकुर ठेंगासिंह ने तो आरम्भ में ही ठेंगा दिखाया। घटना-स्थल से एकदम गायब!!

बारातियों में से कुछ लोग स्वयं जलपान की माँग लेकर लड़कीवाले के द्वार पर गये। वे बोले—'मुंशीजी अर्थात् लड़के के बाप महोदय आपके मुंशीजी अर्थात् लड़की के बाप महोदय से मिलना चाहते हैं। कृपाकर उन्हें जनवासे भेज दीजिए। और साथ ही सत्तर आदमियों के लिए थोड़ा जलपान तो भेजिए। अभी द्वारपूजा में डेढ़ घण्टे की देरी है। लोग तब तक जलपान से तो छुट्टी पा लें।'

मुंशी जालिमप्रसाद बैठकखाने में से यह संवाद सुन रहे थे। एक व्यक्ति से बाहर कहलवा दिया—'जाकर कह दें किसी का बाप किसी के बाप से नहीं मिल सकता। जिसके बाप को सौ बार गरज हो मेरे बाप से, अरे राम राम! लड़की के बाप से आकर मिल जाय। जलपान सलपान द्वारपूजा के बाद ही मिल सकता है। यही हमारे यहाँ का कायदा है। बड़े आये हैं नया-नया विवाह करने।'

लड़केवालों ने सुना तो उन्हें काठ मार गया। उन्हें क्या पता था कि इस ढंग का स्वागत होगा। जानते तो साथ में थोड़ा सामान लेते आये होते। यहाँ पास में कोई बाजार भी नहीं दिखलायी पड़ता कि मँगा लें।

मुंशी दबंगलाल को भी कसकर भूख लगा था। विवाह की प्रसन्नता से ही घर पर पेट भर गया था, सो बिना खाये-पिये ही चले थे। बराती लोग तो मार्ग में कई स्थानों पर कुछ खा-पी भी चुके थे, पर दबंगलाल ने कहीं पानी तक न पिया था। यहाँ यह तमाशा। वे भी ठाकुर ठेंगासिंह के लुप्त हो जाने पर चकित और दुःखी थे।

पुरोहित पण्डित झटकू चौबे से न रहा गया। बोले—'मुंशी बुद्धूलालजी। आप देख क्या रहे हैं ? लोग क्या कहेंगे ? यही न कि निरे कँगले हैं। लड़कीवाला जलपान न कराये तो उपवास करें। निकालिए दो ठो पाँच-पाँच के नोट। अभी मिठाई पूड़ी की व्यवस्था हो जाती है। तीन ही मील पर है न बाजार। कौन सा बड़ा दूर है। पलक मारते ले आता हूँ। चल रे घरभरना हजाम मेरे साथ। यहाँ राय बात करने से कुछ न होगा। समयानुसार कार्य होना चाहिए। देखते नहीं हैं नौशा का मुँह कैसा झुरा गया है ?'

बात यह है कि पण्डितजी का मुँह स्वयं झुरा रहा था ? नौशे से सहानुभूति की बात झूठ थी। वे स्वयं दो गण्डे की पत्ती छानकर घर से चले थे। भूख कसकर लगी थी।

मुंशी बुद्धूलाल ने कहा—'वाह पण्डितजी, लड़का व्याहने आये हैं या अपना दिवाला निकालने। घर से रुपया देना हो तो खूब विवाह रहा। खैर, अब तो बुरे फँसे ही हैं। लीजिए चार रुपये। दो की मिठाई ले लीजियेगा। एक की फरुही और चूड़ा तथा एक की रेवड़ी ले लीजियेगा।'

मुंशीजी के बहनोई लाला मुँहफटप्रसाद ने टिप्पणी की—'क्या भँड़हर भरना है जो रेवड़ी चूड़ा और फरुही मँगवा रहे हो ?'

अस्तु, झटकूजी झटके से उठे और चार रुपये लेकर हजाम

के साथ बाजार की ओर चल पड़े। उनके चले जाने के दस मिनट बाद ही दूसरे रास्ते से ठाकुर ठेंगासिंह अपनी कार से आ पहुँचे आते ही बोले—'घबड़ाइए नहीं। मुझे पहले से ही आशंका थी कि मुंशी जालिमप्रसाद जुल्म करने से बाज न आयेंगे। सो मैं अपने साथ ही कानपुर से आपके लिए नाश्ता लेता आया हूँ।'

ड्राइवर ने लाकर मुंशी बुद्धूलाल के सामने चार छितनी मिठाइयाँ रख दीं। दो हाँडियों में लगभग आठ सेर रसगुल्ले भी थे। लोग 'वाह-वाह, धन्य-धन्य' कहकर ठाकुर साहब की विरुदावली बखानते हुए मिष्ठान्न को उदरस्थ करने में लग गये।

\+ + + +

पण्डित झटफू चौबे लपकते हुए चले और तीन मील की यात्रा कुल तेरह मिनट में तय कर डाली। बाजार में घुसते ही छोलेवाले की दूकान दिखलायी पड़ी। हजाम से बोले· क्योंजी घरभरन। छोला खाये तो तुमहूँ को दस बरस से ऊपर भया होगा। है इरादा तो लाओ पहले थोड़ा छोला खा लिया जाय। हम लोग अपने हिस्से का जलपान यहीं क्यों न कर लें?'

'तब का गुरू। 'अगरे अगरे बिरिप्पाना'। पहिले त तोहँई के खहई के चाही। त खाओ गुरू। छोला लेके जनवासा तक जाना भी त कठिन है। नहीं तो मुंशीजी के भी इहाँ कऽ छोला चिखावा जात।'

सो नाऊ बाभन दोनों ही कचालू छोला खाने में लीन हो गये। पंडितजी बोले—देख रे घरभरना। कोई से गाँव में जाकर कहिहै मत कि चौबेजी बजार में बैठ के तेल क पकौड़ी और छोला खाये रहे। समझा।'

'हाँ गुरू। कहै से का फायदा?'

पूरे तेरह आने के कचालू, छोला, गुलगप्पा और दही-बड़ा

खाकर दोनों ने साँस ली। तीन आने में से छै पैसे के पान खाये और छै पैसे की पत्तीवाली सुरती लेकर घर ले चलने के लिए रख ली।

इस जलपान पान को निबटाकर आध घण्टे बाद ये रेवड़ी, चूड़ावाले की दूकान पर पहुँचे। उससे आठ आने की रेवड़ी और सात आने का चूड़ा खरीदा। अब बच गया था केवल दो रुपया एक आना। मिठाईवाले के यहाँ पहुँचे। उससे साफ-साफ कह दिया—'यदि दो आना रुपया कमीशन दो तो सेर भर मिठाई तौल दो।' वह एक आना कमीशन ही देना चाहता था। पण्डितजी ने कहा—'खैर न तुम्हारी बात, न मेरी। ६ पैसे ही सही। परन्तु जो जो मिठाई तौलो उसमें से एक-एक टुकड़ा पहले चखा देना होगा। बारात का मामला है। तुम्हारी भी बदनामी होगी और मेरी भी। यदि आज का सामान ठीक निकला तो कल भी तुम्हारी ही दूकान से सामान जायगा। क्योंजी घरभरन ?'

'तब का, महराज, लच्छन त इहै दिखात है कि अपने से खरीद के नाश्ता और भोजन करना पड़ेगा। लड़कीवाला कुछ भी न देगा।'

चौबेजी ने कुल आठ मिठाइयों के आधे-आधे टुकड़े चखे। चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ। चखने के नाम पर ही चार मिठाइयाँ उदरस्थ हो गयीं। सोचा—दूकानदार सीधा आदमी है। शहरी दूकानदार तो बड़े चण्ट होते हैं।

मिठाईवाला मिठाई तौल ही रहा था कि मुंशी बुद्धूलाल का भतीजा खुड़बुड़ हाँफता हुआ पहुँचा और बोला—पण्डितजी मिठाई मत खरीदिये। चाचाजी ने मना करने को मुझे दौड़ाया है। डिप्टी साहब मिठाई लेकर आ गये हैं।'

चौबेजी रोनी सूरत बनाकर बोले—का करैं साबजी, मिठाई

तो अब आ गयी। अब खरीदना बेकार होगा। हमारा कोई कसूर नहीं। मुंशी बुद्धूलाल नाराज होंगे कि व्यर्थ में मिठाई क्यों लाये। यद्यपि सेर भर मिठाई और भी आ जायगी तो कोई हानि न हो जायगी। पर दूसरे का मामला ठहरा।'

'हाँ, हाँ महराज, काहे न कहोगे। इतनी मिठाई तो चखाई में ही चट कर गये। ६ पैसा कमीशन तक लै कियो। अब संझा बेरा बोहनी कराये बिना वापस जा रहे हो। ई कौन नियाव है'—सावजी कुड़बुड़ाते हुए बोले।

'अरे तो बाभने के न चखायो। कितना बड़ा धरम भया, ई नहीं सोचते। बाभन के खियावा - पियावा कभी अकारथ नहीं जाता। चल रे घरभरना, चला जाय।'

\+ \+ \+ \+

पण्डितजी के आने पर जब ठाकुर ठेंगासिंह ने सुना कि वे कचालू और छोला खाने में व्यस्त रहे और इसी से इतनी देर लगा दी तो वे बहुत बिगड़े—वाह पण्डितजी, कुछ सगुन साइत का भी ध्यान है। द्वारपूजा समय से होनी चाहिए। एक दिन तो खाने-पीने का ध्यान कम करना रहा।

झटक्कूजी बोले—सरकार! संसार का सारा धंधा खाने-पीने के लिए ही तो है। तो अगर हम थोड़ा खा-पी लिया तो का बुरा भवा। टैम से ही द्वारपूजा होगी, आप निसाखातिर रहो।

\+ \+ \+ \+

द्वारपूजा हो गयी। मण्डप में दूल्हा पहुँच गया। विवाह का कार्य प्रारम्भ हो गया। लड़कीवाले की ओर के पुरोहितजीने वेद-मन्त्रों का अशुद्ध पाठ आरम्भ कर दिया। केवल संकल्प में सत्रह अशुद्धियाँ थीं। ठाकुर साहब संस्कृत के भी विद्वान् थे। यह सब अशुद्ध पाठ उन्हें कष्ट दे रहे थे। पर वे चुप थे। जब सिन्दूरदान

का समय आया तो लड़कीवाले के पुरोहित अड़ गये। इक्यावन रुपये से कम न लूँगा। अब ठाकुर ठेंगासिंह से चुप न रहा गया। बिगड़ कर बोले—आपको लज्जा नहीं आती। आप ब्राह्मण हैं। ब्राह्मण का मुख्य लक्षण है 'सन्तोष'। आप तो डाकू मानसिंह के चाचा मालूम पड़ते हैं। कोई 'टैक्स' है क्या जो आपको दिया जाय? श्रद्धा से जो मिल जाय, वह स्वीकार करना चाहिए। मन्त्र पाठ और संकल्प की दशा यह कि एक भी मन्त्र या संकल्प शुद्ध नहीं। भरद्वाज और शाण्डिल्य के वंशजों की यह दशा। हमारे बाप या पुरखे ऐसे थे, वैसे थे—कहने से तो दशा सुधरेगी नहीं। आप क्या हैं—इसे सोचिए! उद्दण्डतापूर्ण उत्तर देने, नाक तक ठूँसकर भोजन करने, औरों को शाप देने और एक दूसरे की निन्दा करने में ही आपका बाभनपना बच गया है क्या? शास्त्रों के अध्ययन से कोई सरोकार नहीं रह गया। यह आपका घोर पतन है। चारों वर्णों में आप अग्रज माने जाते हैं। जब आप ही अपने कर्तव्य से च्युत हो जायँगे तो क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र तो बिगड़ेंगे ही। न आपसे सन्ध्या से सम्बन्ध, न पूजा से प्रयोजन। मुफ्त का भोजन मिले तो बिना बुलाये भी दस कोस चले जायँ। देश और समाज की सेवा का कोई प्रश्न सामने आवे तो आप बगलें झाँकेंगे।'

पुरोहितजी कसमसाये और कुछ कहकर प्रतिवाद करना चाहते ही थे कि उनके फूफा वयोवृद्ध पण्डित रामसमुझ दूबे बोल उठे—ठाकुर साहब, आपने सत्य ही कहा है। सच बात शत्रु भी कहे तो वह स्वीकार करने योग्य है। आप तो अपने ही हैं। वास्तव में हम ब्राह्मण लोग अपने पूर्वज महर्षियों का नाम तो लेते हैं, पर आचरण में हममें से अधिकांश भ्रष्ट हो रहे हैं। आपने आज हमें सलाह देकर हमारी आँखें खोल दी हैं। हमें पहले अपना दोष

देखना और उसे दूर करना होगा। हम आपके ऋणी हैं।"

अब बेचारे पुरोहितजी भी क्या कहते? उनके फूफाजी ही जब ठाकुर साहब की हाँ में हाँ मिला रहे हों तब कहा ही क्या जा सकता है? मन में सोचा—ई फूफा राम मेरे बाप से भी जलते थे। इन्हें मुझे इक्यावन रुपया मिलना कब सहन होता। "खैर, इस बार यही सही। जो मिल जाय ले लो। हठ करने से यहाँ काम न चलेगा।"

भीतर से क्रुद्ध होते हुए भी प्रसन्नता का अभिनय करते हुए पुरोहितजी ने कहा—सरकार, हमारा कोई आग्रह नहीं है। मैं तो सन्तोषी आदमी हूँ। पर ऐसे ही अवसरों पर मिलने का डौल रहता है। फिर हमें कोई थोड़े ही इक्यावन रुपये देगा। अब आपकी जो मर्जी। आप एक रुपया भी न दो, मैं सब काम खुशी-खुशी करूँगा।

वर-वधू के बदले प्रायः विवाहों में दोनों ओर के पुरोहितों का ही विवाह होता है। कारण जो जो वाक्य या मन्त्र वर-वधू को पढ़ने चाहिएँ उन्हें उभय पक्ष के पुरोहित ही पढ़ लेते हैं। परन्तु ठाकुर ठेंगा सिंह ने इस ओर भी ध्यान दिया। बोले—"रुकिये। ईश्वर की दया से वर-वधू दोनों ही सुशिक्षित हैं। अपने-अपने हिस्से के मन्त्र वे दोनों ही पढ़ेंगे।"

लज्जा और संकोच से अभिभूत रहने पर भी सरला ने सारे मन्त्र पढ़े। गाँव की बड़ी बूढ़ी स्त्रियाँ यह देखकर दंग रह गयीं। बहुतों ने 'छी-छी' कहकर सरला की निर्लज्जता का बखान किया। पर अधिकांश महिलाएँ बोलीं—ठीक तो हो रहा है। नारी को पूरा अधिकार है। वह स्वयं वेद-मन्त्रों को पढ़कर प्रतिज्ञा करे और करावे। वेद न पढ़ सकती हो तो उसका मतलब ही अपनी भाषा में कहे और कहवावे। इसमें बुराई किस बात की है? पति-

पत्नी को सारा जीवन बिताना है। वे एक दूसरे से मण्डप में ही परिचित हो लें और समझ-बूझकर प्रतिज्ञा करें तो यह लाख दर्जे अच्छी बात है।"

\+ \+ \+

कोहबर में जब मुंशी दबंगलाल गये तो गाँव की युवतियों ने उनसे हास-परिहास करना प्रारम्भ कर दिया। कोई उनके कपोलों में दही पोतने लगी तो किसी ने उनकी जेब में एक चूहा डाल दिया। बेचारे दबंगलाल नाम के ही दबंगलाल हैं। उनके जैसा 'झेंपू' दूसरा शायद ही कोई हो। और स्त्रियों के समक्ष तो वे एकदम 'बछिया के ताऊ' ही बन जाते हैं।

सगी सास होतीं तो उनकी इतनी दुर्दशा न होने पाती। चचिया सास और उनकी लड़कियाँ इस उपद्रव से प्रसन्न ही हो रही थीं।

गालियाँ गायी गयीं। ऐसी चुन-चुनकर कि जिनके स्मरण से भी रोमाञ्च हो आता है। दबंगलाल पृथ्वी में गड़े जा रहे थे, पर महिलाएँ गरज-गरज कर गालियाँ दे रही थीं।

तरह-तरह के ऊटपटाँग प्रश्न भी उन्होंने 'दूल्हे' से किये। दबंगलाल बोले—मैं आप सबका छोटा भाई हूँ, लड़का हूँ, नाती हूँ। मेरी रक्षा कीजिए। मैंने हार मान ली। मैं सभी परीक्षाओं में प्रथम श्रेणी में पास हुआ हूँ, पर आप सबकी परीक्षा में 'कम्पार्टमेण्टल' में भी आने योग्य नहीं हूँ।

एक बुढ़िया बोली—ई 'कपार मेटल' का होत है बबुआजी? हार त तूँ जइबै करि हो। आज त 'बड़हार' है न! बर हार जाता है एही से त 'बरहार' नाँव पड़ा एका।

मुंशी दबंगलाल को बड़ा आश्चर्य हुआ। भाषा-विज्ञान की पण्डिता इस बुढ़िया को देखकर।

 \+ \+ \+

दोपहर बीता। तीन बजे और अब चार बजने ही जा रहा था, परन्तु लड़कीवालों ने जलपान, नाश्ता की कोई चर्चा भी न की। दूल्हा खिचड़ी खाने के लिए सबेरे दस बजे से ही तैयार बैठा है, पर उसे कोई खिलावे तब तो। ठाकुर ठेंगासिंह भी गाँव में नहीं, कि उनसे शिकायत की जाय। वे सबेरे ही कानपुर लौट गये थे। सन्ध्या को पुनः आने को कहकर। लोग उन्हें फिर गालियाँ दे रहे थे—'खूब फंसाया, कल दो हँडिया रसगुल्ला क्या खिला दिया मानो कमाल कर दिया। मानो हम लोगों ने रसगुल्ले कभी खाये ही न हों।' आज श्रीमान फिर गायब। कचहरी भी तो बन्द है। एक दिन भी पत्नीजी के दर्शन बिना नहीं रहा जाता। बुढ़ापे में यह हाल है। हम लोग कल सन्ध्या के ७ बजे के भोजन किये हुए हैं। ऐसा सत्कार तो किसी बारात में किसी का न हुआ होगा।'

'तो इसमें ठाकुर ठेंगासिंह का क्या अपराध?' --पण्डित झटकू चौबे ने कल की खरीदी हुई रेवड़ियाँ खाते हुए कहा—'उन्होंने जलपान कराने का ठीका लिया है? लड़कीवाला खिलावे, खाओ, न खिलावे, उपवास करो।'

'उपवास करें हमारे दुश्मन, हम क्यों उपवास करें। और तुम तो पण्डितजी कल गुलगप्पा उड़ा ही चुके हो, और इस वखत रेवड़ियों पर हाथ साफ कर रहे हो। तुम क्यों न कहोगे।' लाला गुस्सैलचन्द बोले।

तब तक लड़कीवालों की ओर से दो तीन व्यक्तियों ने आकर निवेदन किया—तैयार हो जाइए। खिचड़ी भात पर कितने लोग बैठेंगे?

मुंशी हँसमुखलाल ने कहा—खिचड़ी भात पर क्या बैठना भी होगा? हे भगवान! यह तुम्हारे गाँव का कैसा रिवाज है।

धोतियाँ न खराब हो जायँगी ? और तब खिचड़ी भात पर बैठ कर खायेंगे कौन से पदार्थ ? कचौड़ी तरकारी ?

लड़कीवाले हँसते हुए बोले—वाह साहब, खूब पढ़े-लिखे मालूम पड़ते हैं आप। अरे बैठना का अर्थ 'खाना' होता है।

'यह बात है, तब तो हवाई जहाज पर बैठना, रेल पर बैठना, रिक्शे पर बैठना' के अर्थ हुए उन सवारियों को खा जाना। खैर साहब हम लोग तो 'खिचड़ी भात पर न बैठेंगे! हम तो 'पूड़ी तरकारी' पर बैठेंगे, 'दही चीनी' पर बैठेंगे, 'आलू छोला' पर बैठेंगे।

'दिल्लगी मत कीजिए. आप लोग चाहे बैठिये, या खड़े ही रहिये, यह बताइये दूल्हे के साथ कितने लोग खिचड़ी खाएँगे, और समधी के साथ कितने लोग भात खायेंगे ? साथ ही पूड़ी खानेवाले कितने लोग हैं और कच्चा खाना कौन-कौन खायेंगे।—एक व्यक्ति ने प्रश्न किया।

श्रीहँसोड़ेलाल बोले—यह तो आप पूरी मर्दुमशुमारी कर रहे हैं। सरकारी आँकड़े भी अब तक तैयार न हो सके कि पूड़ी खानेवाले कितने हैं ? मांसाहारी कितने हैं, शाकाहारी कितने हैं और फलाहारी कितने हैं।

हम कैसे बतला सकते हैं ? और यह भी हम किस प्रकार कह सकते हैं कि कौन लोग अपने जीवन से निराश होकर परीक्षा में फेल होने या प्रेम-युद्ध में विफल होने से—"यह संसार त्यागने को इच्छुक हैं।"

'क्या मतलब, कैसी अशुभ बातें आप कर रहे हैं, विवाह-शादी के मौके पर ?' एक व्यक्ति ने कुछ रोष के साथ कहा।

'और क्या ? झूठ क्या कह रहा हूँ'—मुंशी हँसोड़ेलाल बोले-'कच्चा खाना तो भइया वही खायगा न जो संसार से ऊब चुका

हो या जिसके पास डाक्टर को देने के लिए काफी पैसा हो। मैंने तो एक बार हलवा बनाया था सो वह कच्चा ही रह गया। पन्द्रह दिन तक 'पेट' महोदय उपद्रव मचाये रहे।'

'आप लोग तो बाल की खाल खींचते हैं। अरे जनाब भारत में ही रहते हैं या आस्ट्रेलिया से आये हैं। कच्चा खाना से मतलब है 'दाल-चावल से'। पूड़ी-तरकारी पक्का भोजन, दाल-भात कच्चा भोजन माना जाता है—यह एक गँवार लड़का तक बतला सकता है।

इसी प्रकार के विचार-विनिमय में डेढ़ घण्टा और निकल गया। पौने 'सात बज रहा था कि मुंशी जालिमप्रसाद के बहनोई मुंशी हुरदंगलाल जनवासे में आ विराजे और लड़ने के स्वर में बोले—

'वाह महाशयो! सत्रह बार आदमी आ चुका आप लोगों को बुलाने सबेरे ११ बजे से। और एक आप हैं कि उठने का नाम तक नहीं ले रहे हैं। कल भी आप लोगों के कारण भोजन की बड़ी बर्बादी हुई। कहा था बारात में चार सौ आदमी लेकर आयेंगे और आये जमापूँजी यही तेइस आदमी थाली बजाते। बड़ी नक्कटई हुई। ऐसी सड़ियल बरात तो हमारे यहाँ खरपतुआ धोबी के यहाँ भी नहीं आयी थी।

'हाँ हाँ साहब, क्यों नहीं? तेइस आदमी के आने पर तो खातिरी बात की यह दशा। अगर चार सौ आते तो न जाने क्या होता। हमारे बाराती बेचारे मर गये खाये बिना। आज सबेरे से बैठे हुए एकादशी-व्रत कर रहे हैं, कोई पुछन्तर नहीं। अब आप आये हैं उल्टे धौंस जमाने'—मुंशी बुद्धूलाल के बहनोई उजागरलालजी ने ललकारा।

'तो क्या झूठ कह रहा हूँ? तीन मन पूड़ी अभी बासी बची

खराब हो रही हैं। आँखें हों तो चलकर देख आइये। एक एक आदमी ने तीन-तीन पाव पूड़ी पत्तल पर जूठी छोड़ दी। इस तरह बर्बादी की जाती है किसी के अन्न की?

इस प्रकार दोनों समधी के बहनोई-द्वय वाग्युद्ध में ताल ठोंककर उतर पड़े। पण्डित झटकू चौबे को भूख सता रही थी। यद्यपि आधा सेर रेवड़ी और सेर भर चूड़ा वे अकेले ही उदरस्थ कर चुके थे, फिर भी उनके 'उदर' महोदय विद्रोह का स्वर ऊँचा कर रहे थे। उन्होंने झगड़ा निबटाने के लिए दोनों पक्षवालों को हाथ जोड़ा और बोले—सज्जनो, आप लोग इस प्रकार लड़िये मत। अब तो जो हो गया सो हो गया। उस पर पानी डालिए। गुस्सा पी जाइए। क्रोध को थूक दीजिए। अब यह बतलाइए कि खिचड़ी भात की रस्म करनी है या नहीं। या हम लोग घर जाने की तैयारी करें?'

'वाह साहब, घर जाने की एक ही रही। और जो स्त्रियों ने मर-मर कर इतना भात उसिना है उसका क्या होगा। चलिए जल्दी कीजिए। भोजन ठण्डा हो रहा है।'

'पहिले आप तो ठण्डे होइए।' चौबेजी बोले—'भोजन गर्म रहे या ठण्डा, यह कोई महत्त्व नहीं रखता। एक दिन ठण्डा भोजन ही सही।'

'तो पहिले दूल्हा खिचड़ी खा ले, तो बाद में भात खवाई की रस्म हो।'

'नहीं साहब, सबको साथ ही बिठा दीजिए। एक ही साथ सब रस्में हो जायँगी।'—चौबेजी बोले।

'आपको पुरोहिती करते कितने महीने हुए पण्डितजी'—मुंशी हुरदंगलाल ने प्रश्न किया—'भला ऐसा भी कहीं हुआ है।

सब रस्में अपने समय से होंगी । एक के बाद एक । कायदे के खिलाफ कोई काम नहीं हो सकता ।'

'अरे भाई बियाह-बरात करते-कराते हमारी सारी उमर बीत गयी'—मुंशी उजागरलाल ने बीच में ही कहा—'कौन भकुवा कहता है कि एक साथ खिचड़ी-भात की रसम नहीं होती ।'

एक बार पुनः वातावरण गर्म हो उठा । लोग हाथापाई करने जा ही रहे थे कि ठाकुर ठेंगासिंह की मोटर जनवासे के द्वार पर आ लगी और लोग इस प्रकार शान्त हो गये जैसे इन्स्पेक्टर साहब के 'क्लासरूम' में अकस्मात् घुस पड़ने पर कक्षा के छात्र शान्त हो जाते हैं ।

'मैंने सब सुन लिया है । घरभरना नाऊ रास्ते में मुझे सब बतला चुका है । इस देश की उन्नति असम्भव है जहाँ आप लोगों जैसे महान् पुरुष वर्तमान हैं । जरा-जरा सी बात पर अकड़ना और लड़ना ही आप लोगों ने सीखा है । शादी - विवाह ऐसे उल्लास और हर्ष के अवसर पर भी आप लोग लत्तमजुत्ता किये बिना नहीं रह सकते । धन्य हैं आप लोग । वन्दना करने योग्य हैं ।'—ठाकुर साहब ने बिगड़ते हुए कहा ।

ठाकुर साहब के आ जाने से वातावरण में ठण्डक आ गयी जैसे गर्मी में गर्म चाय से ठण्डक आ जाती है । लोग मुँह लटका कर चुप रह गये । क्या उत्तर देते । अस्तु ठाकुर साहब के आदेश से एक साथ ही खिचड़ी, भात तथा पक्की और कच्ची खानेवालों का प्रबन्ध किया गया । लोग रात के ६ बजे भोजन करने बैठे । लड़कीवालों को इससे हार्दिक दुःख हुआ । वे लोग वास्तव में रात के पौने बारह बजे बरातियों को खिलाने का प्रोग्राम बनाये हुए थे ।

\+ \+ \+

१७

'कानपुर' की 'चाँदनी' ने ठाकुर ठेंगासिह को अभिनन्दन-पत्र भेंट करने का निश्चय किया है यह जानकर सभी को प्रसन्नता हुई। उन्हें बरेली विश्वविद्यालय ने जब 'डी० लिट्' की उपाधि प्रदान की तो ठाकुर साहब के मित्रों में प्रसन्नता की लहर दौड़ गयी। इसी कारण सबने 'चाँदनी' के तत्वावधान में उन्हें अभिनन्दित करने का निश्चय किया।

डाक्टर ठेंगासिंह के निबन्ध का विषय था—'हिन्दू विवाह का शास्त्रीय, राजनीतिक, आर्थिक, भौगोलिक तथा ऐतिहासिक विवेचन—प्रागैतिहासिक युग से लेकर अब तक।' विषय बड़ा गम्भीर था। पूरे तेरह वर्ष से ठाकुर साहब इस पर परिश्रम कर रहे थे। इनके परीक्षकों ने इनके निबन्ध की भूरि-भूरि प्रशंसा की। और ये 'डाक्टर' हो गये।

शास्त्रीय व्याख्या करते हुए ठाकुर साहब ने लिखा—यद्यपि मनु ने आठ ही प्रकार के विवाह माने हैं—जैसे देव विवाह, ऋषि विवाह, गन्धर्व विवाह, राक्षस विवाह, असुर विवाह, पिशाच विवाह आदि, परन्तु काम्बोडिया में मिले एक वैदिक मन्त्र से यह स्पष्ट है कि भारत में पहले कम से कम तिहत्तर प्रकार के विवाह होते थे। यक्ष विवाह, किन्नर विवाह, भूत विवाह, प्रेत-विवाह, वृक्ष-विवाह, कुम्भ-विवाह; बाल्य-विवाह, वृद्ध-विवाह, तरुण-विवाह, प्रौढ़-विवाह, पूर्ण-विवाह, अर्ध-विवाह, शुभ-विवाह, अशुभ विवाह, विधुर-विवाह, विधवा-विवाह, सधवा-विवाह, कुमारी विवाह, प्रेम-विवाह, प्रात विवाह, रात विवाह, बरात-विवाह, आदि अनेक प्रकार के विवाह प्रचलित थे। इन्हीं में जातीय विवाह, विजातीय विवाह, अन्तर्जातीय विवाह, राष्ट्रीय

विवाह, महाराष्ट्रीय विवाह, अन्ताराष्ट्रिय विवाह आदि की भी गणना की जा सकती है।

कुम्भ विवाह के सम्बन्ध में इनकी व्याख्या यह थी कि कुम्भ पर्व के समय सामूहिक रूप से विवाह होते थे। बिना लात खाये यदि समधी दामाद-वधू को बिदाकर घर वापस लौटते थे तो उसे पूर्ण विवाह कहा जाता था। कभी-कभी सारे बरातियों का विवाह लड़केवाले के गाँव की लड़कियों, कुमारियों या विधवाओं से हो जाता था उसे बरात-विवाह कहते थे।

'कन्यादान' के सम्बन्ध में उन्होंने बतलाया कि यह बाद की प्रथा है, पहले 'वर-दान' होता था। 'वर-दान' शब्द जो पुराणों में मिलता है अब दूसरे ही अर्थ में प्रयुक्त होता है। पहले 'वर का दान' उसका पिता करता था। सम्भव है 'बलिदान' भी वरदान का ही बिगड़ा रूप हो। वर को कन्या के घर जाकर सास ससुर की सेवा करनी पड़ती थी। विश्व के कई देशों में अभी तक यही प्रथा है। विष्णु और शिव जो ससुराल में ही रह गये, उसमें इसी प्रथा की झलक मिलती है।

'खिचड़ी' की रस्म के बारे में उनका अनुसन्धान था कि पहले यातायात के साधन न रहने से बाराती लोग पैदल ही पचास-पचास योजन चलने को बाध्य होते थे। जिससे लड़कीवाले के घर पहुँचते-पहुँचते प्रायः सभी को ज्वर चढ़ जाता था। दो तीन दिन बाद पथ्य के रूप में सबको 'खिचड़ी' मिलती थी।

'वरच्छा' के बारे में उनकी खोज थी कि—पहले लड़कियाँ अधिक होती थीं इसलिए 'वर' का लोग हरण कर ले जाते थे। 'वरच्छा' द्वारा लड़कीवाला 'वर की रक्षा' करने के लिए वेतन-भोगी लठैतों का प्रबन्ध करता था। फिर भी ये लठैत दूसरे पक्ष से मिल जाते थे और लड़कीवाले अपने रुपयों से हाथ धोकर

अपना सा मुँह लेकर रह जाते थे। ठाकुर साहब ने कहा—यह वैदिक युग में होता था। पौराणिक काल में तो केवल लड़के को देखकर इतना कह देना ही पर्याप्त था कि 'वर अच्छा'। और बरच्छा की रस्म पूरी हो गयी समझी जाती थी।

'तिलक' के सम्बन्ध में ठाकुर साहब ने सिद्ध किया कि यह प्रथा पहले भारत में थी ही नहीं। यह तो 'लोकमान्य तिलक' के प्रति श्रद्धा प्रकट करने के लिए हिन्दुओं में एक नयी प्रथा अभी पचास वर्षों से चल पड़ी है।

ठाकुर साहब का यह 'प्रबन्ध' चाँदनी की ओर से छप भी रहा है। पाठक लोग स्वयं पूरा ग्रन्थ पढ़कर उसकी मीमांसा कर सकते हैं। यहाँ पर सभी प्रश्नों की चर्चा करने का न स्थान है न समय।

ठाकुर ठेंगासिंह की धूम मच गयी। इतना गवेषणात्मक ग्रंथ हिन्दी-साहित्य में आज तक छपा ही नहीं था। इसके पूर्व 'मिर्जा चुकन्दर' के सम्बन्ध में 'चाँदनी' की एक विशेष बैठक के अन्दर उन्होंने जो भाषण किया था, उस पर फ्रांस और बर्लिन तक से उनके पास और 'चाँदनी' के मन्त्री के भी पास बधाई के तार आ चुके थे। 'चाँदनी' कार्यालय में उनके उस भाषण की प्रति एक 'चाँदनी' में लपेटकर अब तक सुरक्षित रखी हुई है। उस लेख या भाषण का भी ऐतिहासिक महत्व है। पाठकों की भलाई के विचार से उनका वह भाषण या लेख यहाँ उद्धृत किया जा रहा है:—

'उर्दू साहित्य के अमर कवि मिर्जा चुकन्दर'

सज्जनो,

यों तो उर्दू साहित्य में एक-से-एक महान् कलाकार हो चुके हैं जिनके कारण वह किसी भी साहित्य से टक्कर ले सकता है, कम से

कम शृङ्गार रस और असफल प्रेम के विषय में। विरह-वर्णन जैसा उर्दू साहित्य में है, वैसा किसी अन्य साहित्य में नहीं मिलता। मरने के बाद कब्र में से बोलनेवाले आशिक संसार के किसी अन्य साहित्य में, ढूँढ़ने से भी नहीं मिल सकते। यह उर्दू का ही जीवट है कि मुर्दे तक सजीवों के समान अपना कार्य-व्यापार कर सकते हैं। जिस प्रकार अरबी, संस्कृत तथा फारसी से ब्रजभाषा की उत्पत्ति हुई, ठीक उसी प्रकार उर्दू का ही बिगड़ा हुआ रूप आधुनिक खड़ी बोली यह हिन्दी है। 'हिन्दुस्तानी एकेडेमी' के डाक्टर ताराचन्द तथा पण्डित सुन्दरलाल ने अपने भाषणों तथा लेखों में इस मत का प्रतिपादन बड़े सुन्दर ढंग से किया है और हिन्दी-जगत् के भी कई अलौकिक तथा असाधारण विद्वान्, पण्डित अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी जैसे, उस विचार से सह-मत पाये जाते हैं। पर हम यहाँ इस विवाद में न पड़कर आज एक ऐसे महान उर्दू कलाकार का परिचय करायेंगे, जिनके विषय में अभी उर्दूवालों को भी बहुत थोड़ी ही जानकारी है। इस महान् कवि या कलाकार का नाम था—मिर्जा चुकन्दर।

मिर्जा चुकन्दर का वास्तविक या दूसरा नाम यही था या चुकन्दर उनका उपनाम था, इस विषय में उर्दू साहित्यकों में भी बड़ा मतभेद है। मौलाना शबील अहमद बरैलवी ने 'रिसाल ए मख्लूकात' के सन् १९३४ के सितम्बरवाले अंक में उर्दू-साहित्य के इतिहास पर विचार प्रकट करते हुए मिर्जा चुकन्दर का भी उल्लेख किया है। उनकी राय में मिर्जा चुकन्दर का असली तथा पूरा नाम था 'शारूल मुल्लस्सान ए खिस्सलब्बुल मिर्जा मुकद्दर अली-बेग' और चुकन्दर उपनाम मात्र था। पर तरक्की ए अंजुमन की पिछली बैठक में, जो अभी दिल्ली में गत १७वीं जनवरी को सर तेजबहादुर सप्रू की अध्यक्षता में हुई थी, मौलवी खफ्तुलहवास

बहराइची ने उस मत का जोरदार खंडन किया है। खण्डन करना, हर मामले में राय देना बहुत ही सरल बात है, पर किसी छिपे तथ्य को विद्वन्मण्डली के समक्ष रखना एक भिन्न वस्तु है। इन पंक्तियों के लेखक को एक बार 'पण्डित चन्द्रबली पाण्डेय एम० ए० से भी इस सम्बन्ध में बात करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उन्होंने बताया कि सचमुच शबील अहमद साहब की राय ठीक है, अंजुमन ए तरक्कीवालों की एकदम गलत है। खैर।

मिर्जा चुकन्दर ने अपना यह उपनाम क्यों रखा और यदि यह उपनाम नहीं था, तो उनके बाप ने उनका यह नाम क्यों रखा, इस सम्बन्ध में उर्दू का इतिहास एकदम मौन है। रायबहादुर मुंशी घिसघिस प्रसाद वर्मा तो यह समझते हैं कि ये चुकन्दर अधिक खाते रहे होंगे, पर मौलाना बिलकुल हुसेन का कहना है कि जिस वक्त वे पैदा हुए ऐन उसी मौके पर इनके वालिद के यहाँ किसी ने कुछ चुकन्दर भेजे थे। जो हो, हमसे इस बहस से कोई मतलब या निस्बत नहीं।

मिर्जा चुकन्दर हिजरी सन् ११८६ में जब हिन्दुस्तान में गयासुद्दीन बलबन का राज्य था, गोंडा बलरामपुर के एक छोटे से गाँव लटकनवां में एक अपढ़ किन्तु खाने-पीने में खुश, सम्भ्रांत परिवार में आधी रात के समय पैदा हुए थे। उस समय गोंडा बलरामपुर बंगाल के सूबेदार मियाँ जुल्फिकार खाँ के अधीन था। जुल्फिकार खाँ को यह अपने ससुर टर्रे खाँ से दहेज में मिला था। कुछ लोगों की राय है कि उनके ससुर का नाम टर्रे खाँ नहीं था, वरन् मुस्टण्ड अली था, और टर्रे खाँ का दामाद तो घरदुआर खाँ था, जो इतिहास में शेरशाह के नाम से प्रसिद्ध है, पर हमें इस विवाद से क्या प्रयोजन, ससुर कोई रहा हो।

हाँ, तो मिर्जा चुकन्दर जब कुछ बड़े हुए तो इन्हें मकतब में पढ़ने के लिए बिठाया गया। पर पढ़ने-लिखने में इनका मन नहीं लगता था। उनकी स्मरणशक्ति तीव्र थी, और मस्तिष्क बड़ा उर्वर। पर ये पढ़ने से बड़ी दूर भागते थे। इनके उस्ताद मियाँ हुसेनी बड़े कड़े मिजाज के आदमी थे, जरा से कसूर पर हुक्के की नली से पीटना शुरू कर देते थे। पर मियाँ चुकन्दर पर इस मार-पीट का कोई असर नहीं हुआ। खाँ बहादुर डाक्टर लुत्फुद्दीन की राय में मियाँ हुसेनी नाम का कोई आदमी पिछले ७०० साल के अन्दर गोंडा बलरामपुर में पैदा ही नहीं हुआ, फिर मिर्जा चुकन्दर के उस्ताद का नाम मियाँ हुसेनी किस प्रकार हो सकता है, संभव है लिपिकार के दोष से कोई अशुद्धि हो गयी हो? डाक्टर साहब सप्रमाण लिखते हैं कि मियाँ हुसेनी तो बुरहानपुर के नवाब बेल-गाम हुसेन के दामाद के छोटे भाई थे। खैर, हमसे क्या? ये चाहे बुरहानपुर के नवाब के दामाद के छोटे भाई रहे हों या गोंडा बल-रामपुर के रहनेवाले। यह प्रश्न उतना महत्वपूर्ण नहीं है।

मिर्जा चुकन्दर की रचनाओं की चर्चा करके हमें शीघ्र ही यह लेख समाप्त करना है। वे बड़े ही विनोदी लेखक थे। उनकी कविता में 'इश्क हकीकी' तथा 'इश्कमिजाजी' तो है ही, तुनुक-मिजाजी भी काफी मात्रा में है। उनके घर एक मजदूरिन थी। नाम था उसका अमीनी। अमीनी बड़ी गुस्ताख और मुँहलगू थी। मिर्जा साहब की बीवी को तथा खुद मिर्जा साहब को भी चपेट बैठती थी। एक दिन वह बर्तन मल रही कि मिर्जा साहब ने हुक्का भर लाने को कहा। एक बार कहा, दो बार कहा। जब गिनकर बहत्तर बार कह चुके तो उनसे न रहा गया। उन्होंने चट से उस पर लाइनें लिख ही तो डालीं।—

नहीं ला रही भरके हुक्का तू मेरा।
अरी ओ अमीनी तुझे हो गया क्या ?
उमंगों में बहकी चली जा रही है,
गधी, बोल तेरा गधा खो गया क्या ?

इसी प्रकार एक बार इन्हें अपने पड़ोसी शेख दुदुहूँ दूँ पर बड़ा क्रोध हो आया ? शायद उन्होंने इन्हें सलाम करके हँस दिया था। आप आग बबूला होकर कह उठे।—

अबे हँस रहा खूब तू, खैर हँस ले,
पटककर लगाऊँगा ऐसा तमाचा।
कि रोता फिरेगा कयामत के दिन तक,
पुकारा करेगा मुझे रोज चाचा।

एक बार मिर्जा चुकन्दर गयासुद्दीन बलबन के दरबार में दिल्ली पधारे। बादशाह ने इनकी प्रशंसा सुन रक्खी थी। उन्होंने इनकी खूब आवभगत की। जाते समय विदाई में चाँदी की एक फर्शी हुक्का भी प्रदान किया। आपने तुरन्त झुककर फर्शी सलाम किया और कसीदा पढ़ा जिसमें कि चन्द ये लाइनें हैं। (ये लाइनें पटना लाइब्रेरी में रखी मिर्जा साहब की एक हस्तलिखित पुस्तक से ली गयी है। उक्त पुस्तक के आगे-पीछे का सब फटा हुआ है, कहते हैं कि चूहों ने कुतर डाला है।)

बलबन-सा बादशाह हो, दिल्ली सा हो शहर,
फिर क्यों न हो मुश्ताक जमाना और हर बशर।
करता है चुकन्दर हजार बार शुक्रिया,
सैंया भये कोतवाल तो काहे का मुझको डर॥

घर लौटने पर गाँववालों ने जब सब समाचार पूछा तो मियाँ

चुकन्दर ने विस्तार-पूर्वक सुनाया। गाँववालों के आग्रह करने पर आपने बलवन का वर्णन करते हुए अशआर भी सुनाये।—

दिल्ली का बादशाह बेचारा बलवन,
आलिम है जबर्दस्त हमारा बलवन।
जौहर का कद्र दां है रहमदिल भी 'चुकन्दर'
दुश्मन को तो पुच्छल है सितारा बलवन।

दोनों हैं आँख न कि है काना बलवन।
खाता है खूब पिश्ता मखाना बलवन।
चाँदी का दिया हुक्का, नेजा सोने का 'चुकन्दर'
बेशक है बड़ा घाघ पुराना बलवन॥

बस, इस समय मिर्जा चुकन्दर के बारे में इतना ही।

ठाकुर साहब का अभिनन्दन-समारोह ठाठ से मनाया गया। उन्हें एक चाँदी की कलम भेंट की गयी जिसका आकार 'ठेंगा' के समान था। उनको लोगों ने हिन्दी-साहित्य में 'ठेंगावाद' का प्रवर्तक कहकर उनकी वन्दना की। प्रतिवर्ष उनकी वर्ष-गाँठ के अवसर पर 'चाँदनी' ने कानपुर में 'ठेंगोत्सव' मनाने का प्रस्ताव पारित किया।

कुछ लोगों की ऐसी धारणा है कि ठाकुर साहब ने स्वयं १०००) रु० इस समारोह और अभिनन्दन ग्रन्थ की छपाई के लिये दिये थे। परन्तु विशेष सम्पर्क में रहनेवालों ने इस धारणा का बराबर खण्डन ही किया है। उनका कहना है कि सात सौ रुपये सेठ भड़भड़ियाजी ने तथा तीन सौ रुपये मुंशी दबंगलाल ने अपने विवाह की प्रसन्नता में दिये थे। उन्हीं रुपयों से यह सब सम्भव हो सका। रुपया देकर अभिनन्दन करानेवालों की हिन्दी में कमी नहीं, परन्तु ठाकुर साहब ऐसे मूर्ख नहीं हैं।

१८

मुंशी दबंगलाल का विवाह हो गया। सुश्री सरला अब श्रीमती सरला हो गयीं। ठाकुर ठेंगा सिंह की बात मानी गयी। जालिम ने भी अपना स्वरूप बनाये रखा।

विवाह के पश्चात मुंशी दबंगलाल सरला को लेकर कानपुर लौट आये। सरला की इच्छा थी कि मुंशीजी के गाँव पर होती आवे, पर उन्होंने यह बात स्वीकार न की। बोले—तुम भावुकता न करो। गाँव जाने पर तुम्हें कष्ट होगा। मैं थोथी भावुकता पसन्द नहीं करता। वहाँ तुम्हारा मूल्य तो कोई समझेगा नहीं, उल्टे लोग उपहास करेंगे। अभी गाँव और शहर में जो अन्तर है उसे दूर होने में कुछ समय लगेगा। तब तक गाँव वाले गाँव और शहर वाले शहर से ही सम्बन्ध बनाये रखें तो कल्याण है।

ठाकुर ठेंगा सिंह का आदर पहले से ही सरला भी करती थी और दबंगलाल भी। अब जब कि उन्हीं के कारण ये दोनों एक हुए तब उनका सम्मान इन दोनों के हृदय में और भी बढ़ गया। "चाचाजी, आपका आशीर्वाद हमें सदैव मिलता रहे" कह कर जब दोनों ने उनके पैर पर अपना सिर रख दिया तो ठाकुर साहब भी हर्ष और करुणा से गद्‌गद हो उठे। उन्होंने दोनों के सिर पर हाथ फेरा।

इतने में लोग देखते क्या हैं कि युगान्तरजी एक दर्जन पुस्तकें लिये हुए आये और सरला जी को भेंट देते हुए ये छन्द पढ़े :—

सदा प्रेम पलता रहे, क्षण भी छिड़े न जंग।
पत्नी यदि सरला रहे, शौहर रहे दबंग॥

+ + +

जिसका तुक कोई नहीं 'सिंह, लिंह या डिंह'।
चिर जीवैं सबके सुखद, ठाकुर ठेंगा सिंह॥

\+ + +

अधिकार पावें पत्नियाँ, पति को सतावें पर नहीं।
'नर' मात्र मानें वे उन्हें, समझें उन्हें 'बानर' नहीं॥

\+ + +

अपनी न काया कृश करें, वे व्यर्थ के सन्देह से।
पतिदेव गण भी त्याग दें करना पलायन गेह से॥

\+ + +

सब वर्ग मिल-जुल कर रहें, हँसते रहें, रोवैं नहीं।
विद्वेष और अशान्ति के विष-बीज को बोवैं नहीं॥

\+ + +

शासक तथा शासित सभी, सब भाँति अनुशासित रहें।
परिवार के प्राणी सदृश, मिलकर रहें, हर्षित रहें॥

\+ + +

यह राष्ट्र उन्नत हो, समुन्नत राष्ट्रवाणी हो अहा!
साहित्य 'हित' सोचे सदा, सबका चिरन्तन सर्वथा।

\+ + +

जो कर दिया श्रीमान् ने, वैसा न कोई कर सका।
गुण गान गावें प्रेम से सब लोग 'ठेंगा सिंह' का॥